मुमुक्षु

जुलाई-अगस्त-सितम्बर-२००३



काशी मुमुक्षु भवन सभा, वाराणसी



अध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक
त्रैमासिक पत्रिका

प्रधान सम्पादक
श्री पुरुषोत्तमदास मोदी

वर्ष २२ अंक २
आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद सं० २०६०

जुलाई-अगस्त-सितम्बर
२००३

सम्पादक
प्रमोद शाह
दूरभाष : २४००८२४

प्रकाशक
मुमुक्षु भवन सभा
अस्सी, वाराणसी-२२१ ००५
दूरभाष : २३१००९०, २३६८८९७

वार्षिक	:	४० रुपये
प्र० अंक	:	१० रुपये
आजीवन	:	५०० रुपये

इस अंक में



लेखक द्वारा व्यक्त विचारों से 'मुमुक्षु' अथवा 'काशी मुमुक्षु भवन सभा' का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

मुमुक्षु

वर्ष : २२ जुलाई-अगस्त-सितम्बर २००३ अंक २

पदवाक्यप्रमाणपारवारीण, षड्दर्शनग्रन्थग्रन्थिभेत्ता, नित्यब्रह्मविचारसार- ज्ञाग्रणी, संत्यक्तैषात्रय, भक्तजनवाञ्छाकल्पद्रुम, काशीमुमुक्षुभवनसभा के प्रथमोन्नायक, ब्रह्मीभूत श्री १००८ श्रीस्वामी घनश्यामानन्द जी तीर्थ महाराज के भवाब्धिसन्त-रणपोतवच्चरणकमलों में ॐ नमोनारायणस्वरूप शतशः साष्टाङ्ग प्रणति।



नित्यं ब्रह्मविचारणाप्रवणधीः संत्यक्त-सांसारिकव्यापारोऽखिलशास्त्रपाठनपरः प्रज्ञावतामग्रणीः।
यस्याखण्डतपः प्रभावविगतक्रोधादिवैरिब्रजः सौधौप्याश्रमवद्विभाति स घनश्यामो यती राजते।।

गुरुकृपाकांक्षी एक अनन्य



मंगलमय

श्रीमती अन्नपूर्णा पाठक

मंगलममय का मधुर मिलन तो मंगल है ही।
मंगलमय का चिर बिछुड़न भी मंगलमय है।।
मिलन वियोग एक ही सिक्के के दो पहलू,
एक भला तो बुरा दूसरा होगा कैसे।
एक पीठ पर सिक्के का जो है मूल्यांकन,
अपर पीठ पर भला अन्यथा होगा कैसे।।
मंगल मय का रस वर्षण तो मंगल है ही,
मंगलमय का संघर्षण भी मंगलमय है।। १।।

राजतिलक कल मिला, आज बनवास चले हैं,
कोई हर्ष विषाद नहीं, सस्मित निकले हैं।
वक्र चन्द्र भी शिव ललाट पर शोभित है ही,
शूल-फूल बन जाते जिनके पाँव तले हैं।।
मंगलमय का वंशीवादन मंगलमय हैं,
मंगलमय का चक्रसुदर्शन भी मंगल है।। २।।

मंगलमय का नामोच्चारण मंगलमय है,
मंगलमय का गुण संकीर्तन मंगलमय है।
मंगलमय की कथा स्मरण संस्तुति मंगलमय,
मंगल की सुध में नर्तन मंगलमय है।
मंगलमय का हर वर्णन मंगलमय है ही,
मंगलमय स्मृति में पागलपन मंगलमय है।। ३।।

जो देता है भोग वही क्या रोग न देता,
जो भोजन है शक्ति, वही क्या प्राण न लेता।
कोई गलत भलेही समझे सृष्टि नियम को,
किन्तु वहाँ निर्मल खेल करता अभिनेता।।
मंगलमय का संजीवन तो मंगलमय ही,
मंगलमय का मृत्यु निमन्त्रण भी मंगल है।। ४।।

जन्मपूर्ण, दे दिया दूध माँ के आंचल में,
पोषण का आधार दिया सारे भूतल में।
जिसने खग को पंख दिया, विस्तार गगन का,
मृग को दिया अरण्य, मीन को डाला जल में।
मंगलमय का आलिंगन तो मंगलमय ही,
मंगलमय का उत्पीडन भी मंगल मय है।। ५।।

माँ ही सही जानती शिशु की आवश्यकता,
आतुर का उपचार वैद्य ही अनुभव करता।
शल्य चिकित्सा को जो लेते दण्डरूप में,
कौन, दूर ऐसे रोगी का दुःख कर सकता।।
मंगलमय का अभिनन्दन तो मंगलमय ही,
मंगलमय का सर्वहरण भी मंगलमय है।। ६।।

कहीं नग्न द्रुपदा को वस्त्राभरण दिया है,
कहीं गोपियों का दुकूल अपहरण किया है।
दुष्ट दानवों का संहार रचाया जिसने
अपना भी तो यादव वंशोत्खनन किया है?
मंगलमय का सम्मोहन तो मंगलमय ही,
मंगलमय का काल नयन भी मंगलमय है।। ८।।

सूर्य प्रभामण्डल को तम का पता नहीं है,
पिता पुत्र का अशुभ जानता कभी नहीं हे,
माता नहीं कदापि कुमाता हो सकती है,
गुरुवर, दोष शिष्य जन का देखता नहीं है।
मंगलमय का आकर्षण तो मंगलमय ही,
मंगलमय का तिरस्करण भी मंगलमय है।। ६।।

घी का लड्डू टेढ़ा भी मीठा होता है,
गंगा जल, क्या पाप नहीं सबका धोता है ?
भेद किया है क्या पारस ने स्थान-पात्र का,
तपने के संशय से कंचन क्या रोता है ?
मंगलमय का उद्बोधन तो मंगलमय ही,
मंगलमय का आवर्जन भी मंगलमय है।। १०।।

देवभूमि उत्तरकाशीः विविध संस्कृतियों की संगम स्थली

डॉ. टी. एन. मिश्र

भारतीय संस्कृति हिमालय की तरह उन्नत, गंगा की तरह निर्मल, अलकनन्दा तथा मन्दाकिनी की तरह रसवन्ती एवं गतिशील है। हिमालय की ऐसी सुखदा-सुफला संस्कृति के आँचल में बसी देवभूमि उत्तर काशी विविध संस्कृतियों की सदैव से संगम स्थली रही है। भारतीय संस्कृति के उपादानों में इस सीमान्त जनपद के नदी-नाले, ताल-तलैया, वन-उपवन, ऋतुएँ, दिन-रात, पशु-पक्षी तथा प्रकृति प्रदत्त अनेकानेक उपहार प्रमुख रहे हैं। इसी तपस्थली में अनेक ऋषि-महर्षियों ने हजारों वर्ष तक तप किया और भारतीय समाज की व्यवस्था एवं संस्कृति की आधारशिला रखी।

अध्यात्मिक दृष्टि से उत्तरकाशी का विशेष महत्व रहा है। अष्टादश पुराणों में 'स्कन्ध पुराण' के अन्तर्गत इस स्थान का उल्लेख 'सौम्यकाशी' के नाम से किया गया है। आमधारणा के अनुसार उत्तरदिशा में स्थित होने के कारण लोग इसे उत्तरकाशी के नाम से जानते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। संस्कृत भाषा के 'उत्तर' का अर्थ पश्चात् या बाद में होता है। अर्थात् पूर्व के काशी, वाराणसी के पश्चात आदि गुरू शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म के रक्षार्थ इस काशी की स्थापना की इसलिए इसे उत्तरकाशी के नाम से जाना जाता है।

भौगोलिक दृष्टिकोण से उत्तरकाशी समुद्र तल से १४ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित नव गठित राज्य 'उत्तरांचल' के गढ़वाल मण्डल का पश्चिमी सीमान्त जनपद है। इसके पूर्व में चमोली, पश्चिम में हिमांचल प्रदेश, उत्तर में तिब्बत एवं दक्षिण दिशा में टिहरी-देहरादून है। भारत का यह अन्तिम सीमान्त जनपद है। इसके पश्चात् तिब्बत व चीन है। भारतीय मानचित्र पर यह सीमान्त जनपद जितना लघु अस्तित्व वाला है उतना ही ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह जनपद प्रकृतितः दो उपत्यकाओं क्रमशः गंगा और यमुना में विभक्त है। क्षेत्रीय विभाजन में इसे 'टकनौर' (गंगाघाटी) तथा रवाँई (यमुना घाटी) के नाम से जाना जाता है। इन दोनों उपत्यकाओं की सीमा रेखा विशाल हिमश्रृंग 'राड़ीटाप' है। भारत की दो पवित्र नदियों भागीरथी (गंगा) एवं यमुना का उद्गम क्रमशः गंगोत्री (गोमुख ग्लेशियर) तथा यमुनोत्री (सप्तर्षिकुण्ड) इसी जनपद में है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारत भूमि पर इस क्षेत्र का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। प्रसिद्ध तीर्थ स्थल होने के कारण प्रत्येक युग के अवशेष, चिन्ह, तथा प्रमाण यहाँ विद्यमान है। यमुना घाटी में बड़कोट के निकट 'टटाऊ महादेव' मन्दिर में नवपाषाण युगीन उपकरण की-प्राप्ति, पुरोला के निकट 'छिबाला' में महाभारत कालीन संस्कृति के अवशेष एवं इसी के निकट देवढूंगा गाँव के समीप ईराकोट की खुदाई में प्रथम ई० पूर्व गरूड़ पक्षी के आकार की 'यज्ञ वेदिका' की प्राप्ति हुई है। इसी प्रकार उत्तरकाशी नगर में विश्वनाथ मन्दिर के सम्मुख शक्ति मन्दिर में लगे शक्ति स्तम्भ पर ५वीं शदी ई० पूर्व का राजा 'गुह' का अभिलेख, यमुना घाटी के लाखामण्डल में ४थीं शदी ई० पूर्व राजा 'जयदास' एवं ७वीं शदी ई० पूर्व महारानी ईश्वरा आदि का अभिलेख प्राप्त है। गुप्त,

मौखरी एवं हर्षवर्धन के शासन काल में यह क्षेत्र इन्हीं राजवंशों के अधीन रहा। यह क्षेत्रं 'ब्रह्मपुर व शत्रुघ्न' दो भागों में विभाजित रहा। गंगा उपत्यका के क्षेत्र को 'ब्रह्मपुर' एवं यमुना उपत्यका के क्षेत्र को 'शत्रुघ्न' के नाम से जाना जाता रहा। कुछ इतिहासकारों ने उत्तरकाशी के बाडाहाट क्षेत्र की पहचान ब्रह्मपुर नगर से की है। भारत आये प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने क्रमशः ब्रह्मपुर एवं शत्रुघ्न नगर की यात्रा की थी।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह सीमान्त जनपद विविधतापूर्ण है। इन उपत्यकाओं में बसे गढ़वाली समाजों का अवलोकन करने से पता लगता है कि एक समाज में कई माईक्रोसमाज सन्निहित हैं, इसीलिए इन क्षेत्रों में सांस्कृतिक विविधताएँ स्पष्ट होती हैं। इन क्षेत्रों की परम्परायें, रीति-रिवाज, लोकाचार, भाषा, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, जीवन शैली, त्यौहार, नृत्य मेले, मूल्य, विश्वास, मान्यताएं, धर्म एवं जादू-टोना, टोटम, देवी एवं देवता भी एकता में विविधतापूर्ण है। रवाँई क्षेत्र (यमुना घाटी) पर जहाँ हिमांचली संस्कृति का प्रभाव है वही टकनौर क्षेत्र (गंगाघाटी) पर भोटान्तिक एवं गढ़वाली संस्कृति का मिला जुला स्वरूप देखने को मिलता है। रवाँई क्षेत्र का सीमावर्ती क्षेत्र जौनसार भॉवर (जनपद देहरादून) है। जो कि हिमांचली एवं जौनसारी संस्कृतियों का मिला जुला स्वरूप है। टकनौर क्षेत्र में तिब्बत में प्रचलित बौद्ध धर्म के अनुयायी भी निवास करते हैं। इनके धर्म गुरु लामा है। इन्हें क्षेत्रीय भाषा में 'जाड' या 'भोटिया' कहते हैं। 'जाड' मूलतः मंगोलायड रक्त वर्ण से सम्बन्धित है जबकि गढ़वाली (गंगाड़ी) तथा रवाँई के निवासी 'खस' रक्तवर्ण से सम्बन्धित हैं। इन दोनों घाटियों में प्रमुख रूप से पितृ-सत्तात्मक परिवार का प्रचलन है। विवाह के लिए यहाँ के समाजों में वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष के यहाँ लड़की का हाँथ मांगने जाते हैं। जो कि मैदानी क्षेत्रों के विपरीत लोकरीति है। किसी-किसी समुदायों में वधू-मूल्य का प्रचलन भी पाया जाता है। रवाँई क्षेत्र में बहुयें पिता के घर में जितनी स्वतंत्र होती हैं। ससुराल में उतनी ही परतन्त्र होती हैं। क्षेत्रीय भाषा में इन्हें क्रमशः 'रान्ती एवं ध यान्ती' के नाम से पुकारा जाता है। मानव वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार यमुना उपत्यका के जौनसार भाँवर क्षेत्र में बहुपति प्रथा का प्रचलन भी पाया जाता है। सबसे बड़े भाई की पत्नि अन्य भाइयों की पत्नि होती है। इनसे उत्पन्न सन्तानों को पिता का नाम सबसे बड़े भाई का मिलता है। परन्तु परिवर्तन के इस दौर में ये प्रथाएँ भी एक विवाह में परिवर्तित होने लगी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार एवं गृहस्थी का सम्पूर्ण दायित्व महिलाओं के कन्धों पर होता है। इनकी दिनचर्या प्रातः ४ बजे से

राजा विक्रमादित्य की स्मृति में विक्रम संवत आज भी प्रचलित है। महाराजा विक्रमादित्य का काल अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। उन्होंने दरबार में अपने सामने एक प्रेरक श्लोक लिखवा कर टांग रखा था-

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरित्रमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं, किन्नु सत्पुरुषैरिव।।

मेरे इस बहुमूल्य जीवन का जो दिन व्यतीत हो रहा है, वह पुनः लौटकर नहीं आएगा। अतः प्रतिदिन यह चिन्तन कर कि आज का दिन पशुवत गुजरा अथवा सत्पुरुष की तरह गुजरा।

प्रारम्भ होकर रात्रि १०बजे तक चलती रहती है। ये लगभग प्रतिदिन १८ घंटे काम करती है। बच्चों का जन्म, पालन-पोषण, परिवार की देखरेख, पशुओं का चारा, खेती का कार्य, दूर गधेरे से पानी लाना, रसोई का कार्य करना, कूटना ही नहीं अपितु खड़ी चढ़ाई वाले ऊँचे पर्वतों तथा जंगल से पूरे वर्ष के लिए पशुओं का चारा एवं जलाऊ लकड़ी का बोझ अपने पीठ पर लादकर ले आना भी महिलाओं का ही कार्य है। इस कार्य के सम्पादन में अनपढ़, पढ़ी-लिखी महिलाओं, छात्राओं (स्नातक व परास्नातक) व नौकरी पेशे वाली महिलाओं का पूर्ण सक्रिय सहयोग रहता है। पुरूष केवल खेतों में हल चगाने का कार्य करता है। अधिकांशतः युवक फौज में नौकरी करते हैं अथवा घर पर ही रहते है। दिनभर ताश खेलना, बीड़ी पीना, तथा शाम को शराब पीना इनकी दिनचर्या है। खेती के दिनों में स्कूल व कॉलेजों में छात्राओं की संख्या कम हो जाती है। क्योंकि वे खेतों में काम करने चली जाती हैं। जब कि छात्र नगर में ही रहते हैं। इसका प्रमुख कारण कृषि योग्य भूमि की कमी है। यहाँ पर चौड़ी सीढ़ीनुमा खेत होते हैं। कृषि के अतिरिक्त शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, कुटीर उद्योगों तथा साहसिक कार्यों जैसे पर्वतारोहण आदि में भी महिलाओं की सहभागिता बढ़-चढ़ कर है। जिनमें चन्द्रप्रभा ऐतवाल, डॉ० हर्षवन्ती बिष्ट, बचेन्द्री पाल, सुमन कुटियाल आदि का नाम प्रमुख है।

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता का आकर्षण यहाँ के देवी-देवता भी हैं। किसी भी क्षेत्रीय मेले, त्योहार, धार्मिक कथाएं, प्रवचनपर्व एवं स्नान पर इनकी पालकियाँ दूर-दराज पर्वतीय क्षेत्रों से अवश्य आकर सम्मिलित होती हैं। इन समाजों में जहाँ अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है वही ग्राम देवता, कुल देवता व परगने के देवता की भी पूजा की जाती है। जो कि इन विविध समाजों का ईश्वर, राजा एवं न्यायाधीश भी होता है। बिना इनकी अनुमति के कोई भी शुभ-अशुभ अथवा नया कार्य परिवार में नहीं किया जा सकता यहाँ तक कि अमुक रोगी का इलाज या ऑपरेशन आधुनिक चिकित्सा पद्धति से कराया जाये अथवा झाड़-फूँक से इसका निर्णय भी देवता ही करता है। परन्तु वर्तमान समय में परम्पराओं व मान्यताओं का आधुनिकीकरण होने के कारण नगरीय क्षेत्रों में दोनों चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन होना प्रारम्भ हो गया है। सम्पूर्ण जनपद में वैदिक देवताओं व ऋषि-महर्षियों में कपिलमुनि, सुखदेव, यमदग्नि, परशुराम आदि प्रमुख हैं। महाभारत के नायकों में कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, शल्य, द्रौपदी एवं कुन्ती आदि हैं। महाभारत काल से सम्बन्धित अनेक मिथक व स्थान जेसे लाक्षागृह, स्वर्गारोहण, हिडिम्बाखाल, भीम गुफा, द्रोणगिरी पर्वत, राजा विराट के किले का खण्डहर, सवालाख शिव लिंगों की पूजा आदि इस क्षेत्रों में अभी विद्यमान हैं। यह क्षेत्र विविध देवी-देवताओं की धरती होते हुए भी हिमालय का प्रमुख स्थान होने के कारण यहाँ शिव पूजन का महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक स्थलों में इस जनपद में महासू (महाशिव) महादेव, गंगनानी, देवजानी, हर की दुन, माझीवन, हनोल, नैटवाण, यमुनोत्री, गंगोत्री, गोमुख, तपोवन, रेणुका मन्दिर, सेम-मुखेम, हर्षिल में लक्ष्मी नारायण मन्दिर, उत्तरकाशी नगर में विश्वनाथ मन्दिर, विमलेश्वर महादेव, कुअेटी देवी मन्दिर, महिषासुर मर्दिनी मन्दिर, केदार मंदिर आदि प्रमुख है। उत्तर काशी नगर में भागीरथी का प्रवाह भी पूर्व काशी की ही तरह अर्द्ध-चन्द्राकार है। यहाँ भी

केदारघाट व मणिकर्णिका घाट हैं। गंगा घाटी के अधिकांशतः देव मन्दिर प्रस्तर निर्मित कत्यूरी शैली पर आधारित है। ये लगभग एक हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं। इनमें उत्तरकाशी, धराली, नाकुरी हर्षिल तथा मुखबा आदि के मन्दिर मुख्य हैं।

धार्मिक पर्वों में देव-दिवाली, सेल्कू, बिस्सू, जागरा, जखोली आदि विशिष्ट पर्व हैं। इनमें देव दीवाली में (दीपावली से ठीक एक माह पश्चात) डिप्सा एवं देवलांग जलाने की परम्परा अति सुन्दर है। इसमें एक लम्बे देवदार के वृक्ष को काट कर उस पर देवदार एवं चीड़ की सूखी गरी। (लकड़ी जो तैलीय है) बाँधकर उससे बड़ा मशाल जलाया जाता है। सेल्कू, हर्षिल एवं गंगोत्री क्षेत्र का विशिष्ट पर्व है। बिस्सू युद्ध का त्योहार है। जिसमें धनुष बाण लेकर एक दूसरे पर वार करते हुये नृत्य किया जाता है। 'जागरा' एक विशुद्ध धार्मिक मेला है जिसमें हवन-पूजन के पश्चात पाण्डव काल का एक विशिष्ट रीति से नृत्य किया जाता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य तो इन उपत्यकाओं को विरासत में प्राप्त है जिसे प्रकृति ने दोनों हाँथों से इन्हें प्रदान किया है, जिसका वर्णन न करना इन उपत्यकाओं के प्रति निःसन्देह ना-इन्साफी होगी। यहाँ की ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाएँ, इन पर्वत श्रृंखलाओं के वक्षस्थल पर सुरम्य बुग्याल (बाग), ताल-तलैया, अट्टहास करते हुए झरने अनायास ही पथिक का मन मोह लेते हैं। रामासिराई की विस्तृत चौड़ी घाटी जो श्रावण-भद्रपद में अपनी हरियाली तथा ऐश्वर्य के चरमोत्कर्ष पर रहती है, दर्शनीय है। माझीवण, देववण, हरकीदून, डोड़ी ताल, नचिकेता ताल, सप्तऋषि ताल, दयाल हर्षिल, हेमकुण्ड साहब, भोजबासा, गोमुख, तपोवन तथा अनेक छोटी-छोटी फूलों की घाटियाँ यहां का मुख्य आकर्षण हैं। सघन हरीतिमा के देवदार, विस्तारित वन, चैत्र मास में बुरांस की हरियाली के साथ उसके फूलों की लाली से रंगे पर्वत मन में असीम आनन्द एवं औत्सुक्य उत्पन्न करते हैं। हेमन्त में हिमाच्छादित श्वेत धवल पर्वत तथा कोमल बर्फ का दृश्य व स्पर्श वर्णनातीत है। इन नैसर्गिक अप्रतिम, प्राकृतिक दृश्यों को देखने पर ऐसी अनुभूति होती है कि इन्हें अबाध रूप से निहारते-निहारते इन्हीं में समाहित हो जाए।

वस्तुतः इस देवभूमि को जानने तथा जीने के लिए एक जीवन अति-अल्प है।

◆

एक दिन स्वामी विवेकानन्द जी शिवनगरी काशी पहुंचे। उनकी इच्छा हुई कि गंगा स्नान कर लिया जाए, स्नान करने के पश्चात वे गोदौलिया चौराहे की ओर बढ़े ही थे कि अचानक बंदरों ने उन्हें दौड़ाया। स्वामी जी लम्बा कुर्ता व लुंगी वेश में थे सर पर बड़ी पगड़ी धारण किए हुए। कुर्ते की जेब में कुछ कागज पत्तर होने से जेब भारी लग रही थी। बंदरों ने सोचा होगा कि कुछ खाद्य-सामग्री है छीन ली जाये।

यथा स्वामी जी डरे, तेज चले फिर दौड़ने लगे। बंदरों ने पीछा किया, जनता तमाशा देख रही थी कि अचानक आवाज आयी 'भागो नहीं' स्वामी जी ठिठक गये, रुके ही थे कि बन्दर वापस भाग गये।

उन्हें बोध हुआ कि जब तक हम इसी प्रकार विपत्ति से भागते रहेंगे वह हमारी पीछा करेगी। हिम्मत, साहस और दृढ़ निश्चयी होने पर ही टिक पाना संभव होगा।



योगः कर्मसु कौशलम्

गगनेन्द्र कुमार केडिया

योगी का ध्यान करते ही ऐसे सन्त-महात्मा का आकार सामने आ जाता है जिसके मुख पर तेज हो, बड़ी-बड़ी दाढ़ी हो, तिलक से मस्तक सुशोभित हो। ऐसे योगी जो योग एवं तपस्या करते हैं, वे साक्षात् भगवान का दर्शन करने या किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये योग-तप-साधना करते हैं। उनके ध्येय में इहलौकिक पदार्थ नहीं होते। हिरण्यकश्यपु ने तपस्या की थी तो सफल होने पर भगवान से वरदान मांगा था कि उसकी मृत्यु न पृथ्वी पर हो, न आकाश में। मृत्यु के समय न दिन हो न रात। इसी प्रकार रावण और भस्मासुर ने भी योग एवं तपस्या किसी विशिष्ट इच्छा की पूर्ति के लिये की थी। उनकी इच्छायें तामसिक थीं, पर योगी वे भी थे। साधना करने वाला श्रेष्ठ योगी वह है जो सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये नहीं, वरन् परमार्थ या भगवान की प्राप्ति के लिये योग साधना करे।

पर केवल तपस्या एवं योग साधना करने वाला ही योगी नहीं होता। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है-"योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात् जो व्यक्ति अपने कर्म को कुशलता से संपन्न करता है, वह भी योगी है। वह योगी क्यों है? वह योगी इसलिये है क्योंकि कर्म को कुशलतापूर्वक वही कर सकता है जो अपने कर्म पर पूरा ध्यान एक योगी की भांति केन्द्रित कर पाता है। अर्जुन ने चक्र में चलती हुई मछली का नीचे रखे तेल में प्रतिबिंब देखकर समस्त इन्द्रियों को एक योगी की भांति मछली की आंख पर केन्द्रित कर दिया था। कर्म में कुशलता वाले योगी का यह श्रेष्ठ उदाहरण है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है- "कर्मण्ये वा अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् "अर्थात् हमें केवल कर्म करने का अधिकार है। फल देने वाला भगवान है। यदि हम एक योगी की भांति सत्कर्म करते हैं तो निश्चित रूप से भगवान उसका सुफल देगा ही। किन्तु यदि हम अपने जीवन में शांति चाहते हैं तो हमें कोई भी कर्म फल की आशां से नहीं करना चाहिए। जब हम कर्म किसी फल हेतु करेंगे तभी तो हमें निराशा प्राप्त होगी। यदि हम आशा ही नहीं रखेंगे तो निराशा भी नहीं होगी।

सांसारिक व्यक्ति को सर्वाधिक अशांति तब होती है जब वह अपने "अहम्" से जकड़ जाता है। अहं (अंग्रेजी में इगो) बहुत छोटा शब्द है, पर समस्त पारिवारिक एवं सामाजिक कार्यों को सम्पन्न करने में यही बाधा पहुंचाकर कलह के द्वार तक ले जाता है। अभिमान एवं स्वाभिमान में बहुत अंतर होता है। बहुत अधिक धन प्राप्त करके व्यक्ति अपने को सबसे बड़ा समझने लगता है। यह अभिमान है। स्वाभिमानी होना, अर्थात अपने प्रति गलत व्यवहार का शांतिपूर्वक विरोध करना, अच्छी बात है। पर अभिमान करना, अच्छी वात नहीं है।

यदि हम अपने जीवन को शांति से परिपूर्ण रखना चाहते हैं तो अहम् से बाहर निकलने के साथ ही एक कार्य और करना होगा। हमें अपने कर्तव्य के अनुसार जो भी काम उचित लगे, वह बिना इस आशा के करना चाहिए कि हमें उसका प्रतिफल मिलेगा। हमारा कोई इष्ट-मित्र-संबंधी ऐसा कार्य कर सकता है जो

उसके कर्तव्य के प्रतिकूल हो एवं जिससे हमें हानि पहुंचाना उसका उद्देश्य हो। जो व्यक्ति सामने वाले के अनुचित कर्म पर ध्यान न देकर भी, उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता है, उससे बड़ा योगी कोई नहीं है। यदि हम अपने कृत्य का निर्धारण यह सोचकर करते हैं कि सामने वाले का मेरे प्रति व्यवहार अच्छा है या नहीं या जैसा दुर्व्यवहार उसने मेरे साथ किया वैसा ही मैं भी उसके साथ करूँगा तो यह अत्यंत सामान्य एवं साधारण व्यक्ति का व्यवहार हुआ। इसमें हमने अपने धर्म एवं कर्तव्य का पालन नहीं किया। "आहार, निद्रा, भय, मैथुनं च, सामान्य मंतत् पशु भिर्नराणम। खाना, सोना, भयभीत होना एवं मैथुन का सुख प्राप्त करना यह तो पशु भी करता है। फिर पशु एवं मानव में अंतर क्या हुआ? "धर्मोहि एको तेषां विशेषः धर्मेण हीना पशुभिः समाना" धर्म एवं कर्तव्य का निष्काम पालन करना एवं अपने अहम् का परित्याग करना, यही मानव को पशु से भिन्न करता है।

स्वयं बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंध "पर चित्तानुरंजन" में एक उदाहरण दिया है कि एक बादशाह ने एक ग्रन्थ लिखा जिसे अपने दरबार में आये एक विद्वान को दिखाया। उस विद्वान ने एक वाक्य पर आपत्ति की तो बादशाह ने कहा कि आप काट कर ठीक कर दें। उस विद्वान ने ऐसा ही किया। उनके जाने के बाद बादशाह ने जैसे स्वयं लिखा था। वैसा ही पुनः लिख दिया। इस पर चकित दरबारियों ने कहा कि आपने ऐसा क्यों किया ? इस पर बादशाह ने कहा कि मुझे मालुम है कि मैंने जो लिखा वही सही है। पर उस विद्वान को दुःख न हो इसलिये उनके सामने उनकी बात नहीं काटी। यह पर (दूसरे के) चित्त को अनुरंजित करना हुआ। दुसरे व्यक्ति के अनुचित कार्यों पर भी दुःखी एवं रूष्ट न होना, अपने धर्म एवं कर्तव्य का निष्काम भाव से पालन करना, ईर्ष्या एवं द्वेष से परे रहते हुए अहम् का परित्याग करना अति दुष्कर एवं कठिन है। जीवन में पूर्ण शांति की प्राप्ति ऐसा करने से ही प्राप्त होती है। यही सांसारिक व्यक्ति की योग-साधना है। ऐसा कर सकने वाला सच्चा कर्मयोगी है। "परोपकाराय सत्ता विभूतय" अपने हानि-लाभ की चिंता किए बिना परोपकार करना श्रेष्ठ योगी का लक्षण है। ऐसा व्यक्ति किसी का उपकार जब बिना किसी प्रतिकार की आशा के करता है, तब उसे निराशा प्राप्त नहीं होती। वह एक योगी की भांति अपने अहम् का परित्याग करते हुए मानसिक शांति को पूर्ण रूप से प्राप्त करता है। ◆

प्राण दण्ड का हुक्म पाये हुए कैदी के रूप में सुकरात जब कारावास में थे, तब क्रीटा (उनके परम शिष्य) ने उनसे कहा, "आप जेल से भाग चलिये। बाहर सब इंतजाम हो चुका है। किसी दूसरे देश चले जाइए। मेरे जीवन भर की कमाई जो कुछ भी है सब आपकी नजर है"।

सुकरात ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया मैं ऐसे अनुचित प्रस्ताव की स्वीकृति नहीं दे सकता। जिस देश में मैं पैदा हुआ, जहां मेरे माता-पिता रहे, जहां के अन्न, जलवायु से मैं पला हूं, उस देश के नियमों के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता।

कथा का जादू

सन्त कुमार मिश्र

यद्यपि उसके सब मित्र सदाचारी और सद्गुणी थे, पिता भी भगवद् भक्त थें अभी दो वर्ष पूर्व ही पिता सुरधाम सिधार गये थे। उसे प्रारब्ध वश जुए की लत लग गयी थी। घर और गाँव के सभी लोग रात नौ बजे तक भोजनादि करके सो जाते थे, परन्तु ये लम्बे डग जुए के अड्डे की ओर चल देते थे।

इनके सभी मित्र इन्हें इस बुरी लत से छुड़ाने का प्रयत्न कर चुके थे। आग्रह करते थे कि यह कथा सुनने जाये। शायद पंडित जी की कथा के असर से यह अत्यन्त बुरी लत चली जाये। परन्तु वह कथा में जाता ही नहीं था। इतना ही नहीं जहाँ कथा होती थी, उस रास्ते से जाना ही पड़े तो दोनों कानों को अंगुलियों से बन्द करके शीघ्रता से निकल जाता था।

खेती-बारी, दुकान, व्यापार, सब करने की क्षमता थी उसमें। परन्तु जुए की लत तो बड़े-बड़े भी नहीं छोड़ पाये, उस कारण भारी से भारी दुर्गति भले ही हो रही हो।

तीन घड़ी रात बीत चुकी थी। भोजन करके अंधेरी रात में शीघ्रता पूर्वक अड्डे की ओर कदम-कदम बढ़ते चले जा रहे थे। मार्ग के किनारे ही एक पंडित जी बड़ी सरस कथा कह रहे थें दूर से ही देखा और दोनो कानों को अंगुलियों से दृढ़ता पूर्वक बन्द करके कुछ अधिक ही तेजी से सड़क के दूसरे किनारे से बढ़ने लगे। एकाएक किसी वस्तु से पैर टकराया। चोट ज्यादा ही आ गयी थी। रक्त प्रवाह हो रहा था। कानों में लगी अंगुलियाँ इस समय रक्त प्रवाह रोकने में लग गयीं। इस स्थिति में भी शीघ्र ही इस स्थान से चले जाने की तत्परता बनी ही रही।

एक बार एक गृहस्थ एक साधु के पास गया और उसने उससे पूछा-'मोक्ष-प्राप्ति के लिए क्या घर-बार छोड़ना आवश्यक है?' साधु ने कहा-'नहीं तो। देखो। जनक जैसों ने जब राजमहल में रहकर मोक्ष प्राप्त कर लिया, तो फिर तुम्हें घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है ? फिर दूसरा मनुष्य आया और साधु से उसने पूछा-'स्वामीजी, घर-बार छोड़े बिना क्या मोक्ष मिल सकता है?' साधु ने कहा-'कौन कहता है ? घर में रहकर सेंत-मेंत में ही मोक्ष मिलता, तो शुक जैसों ने जो घर-बार छोड़ा, तो क्या वे मूर्ख थे? बाद में उन दोनों मनुष्यों की जब एक-दूसरे से मुलाकात हुई, तो दोनों में बड़ा-झगड़ा मचा। एक कहने लगा-'साधु ने घर-बार छोड़ने के लिए कहा है।' दूसरे ने कहा-नहीं, उन्होंने कहा है कि घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।' तब दोनों साधु के पास आए। साधु ने कहा- 'दोनों का कहना ठीक है। जैसी जिसकी भावना, वैसा ही उसका मार्ग और जिसका जैसा प्रश्न, वैसा ही उसका उत्तर घर छोड़ने की जरूरत है, यह भी सत्य है और घर छोड़ने की जरूरत नहीं है, यह भी सत्य है।' इसी को कहते है 'भी-सिद्धान्त'

देवताओं की परछाईं नहीं हुआ करती

एकाएक पंडित जी के मुख से निसृत वाक्य कानों में पड़ा। जल्दी से उठ भागे कि कहीं कोई दूसरा वाक्य भी कान न सुनलें। यह वाक्य कान में जम गया जुए का अड्डा थोड़ी ही दूर पर था। वहीं मरहम पट्टी हुई। जुए का खेल अव्याहत चलता रहा। शेषरात्रि में घर आये परंन्तु यह चिन्ता लेकर कि यह वाक्य कैसे निकले।

जुआड़ी मित्रों से पूछ-पूछ कर उपाय किये गये। वैद्यराज के पास गये तो वे मौऩ ही रहकर सिरहिला दिये। सारे प्रयत्न किये गये परन्तु "देवताओं की परछाईं नहीं हुआ करती" यह वाक्य नहीं ही निकला। थककर उपेक्षा कर दिया परंन्तु पैर का घाव जब-जब दर्द करता तब-तब पंडित जी का वाक्य याद आता ही रहता।

चार-पाँच पुरुष धवल वस्त्र सज्जित हाथ में लालटेन लिये एक रात्रि आये। ये गर्मी की ऋतु के कारण घर के बाहर ही सो रहे थे। जगने पर बतलाया कि हम सब तुम्हारे पितरगण हैं। तुम्हें आशीर्वाद देने स्वर्ग से आये है। साथ ही धन सम्पत्ति से इतना परिपूर्ण कर देंगे कि तुम्हें जुआ खेलने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। तुम रुपये रखने के बक्से को बन्द ही रखो परन्तु दिखा दो। हमारे स्पर्श मात्र से वह रत्नों से भर जावेगा। फिर हम तुम्हारे माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद देकर चले जावेंगे। हमारा स्वरूप और हाथ में जलती लालटेन देख़कर विश्वास करो।

एकएक जुआड़ी को कथा वाला पंडित जी का वाक्य स्मरण हो आया कि देवताओं की परछाईं नहीं हुआ करती। मगर इनके हाथ के लालटेन के प्रकाश में इनकी परछाइयाँ तो छत को छू रही हैं। हो न हो, ये ठग हैं। भाषा भी मनुष्य जैसी बोल रहे हैं। देवताओं की भाषा तो गंभीर होनी चाहिये। अतः निश्चित ही ये ठग हैं। ऐसा सोंचकर लघुशंका करने के बहाने कुछ दूर हट कर जोर से चिल्लाया -चोर ! चोर ! लोग दौड़े तब तक ठग लालटेन पटकर कर अंधेरे में गायब हो चुके थे।

अब वह जुआड़ी नहीं था। अड्डे की बात सुनकर भी उसे रोष आ जाता था। दूर-दूर होने वाली कथा में जाकर श्रवण करना उसके जीवन का अंग बन चुका था।

◆

देव प्रबोधिनी एकादशी की रात्रि को संत तुकाराम का हरि कीर्तन था। गांव के सर्वोपरि धनाढ्य रानाडे से उनका बड़ा कालीन तुकाराम जी ने मांगा "भाऊ! अपनी संत मंडली को तुम्हारे सुन्दर कालीन पर विठलाएंगे, दोगे अपना श्रेष्ठ कालीन? रानाडे 'नहीं' न कह सके, किन्तु कालीन की रक्षा के लिए स्वयं भी रात्रि जागरण में जा पहुंचे।

रात्रि आठ बजे से प्रातः आठ वजे तक संत तुकाराम अखंड कीर्तन करते रहे। रात्रि के लगभग सव भक्त मंडली तो चली गयी, रह गये केवल तुकाराम और रानाडे। तब स्वयं भगवान विठ्ठल भक्ति विभोर होकर तुकाराम के साथ कीर्तन और नृत्य में सम्मिलित हो गये-वह चरम आनंदमयी रात्रि प्रेम- पारावर में परिपूर्ण हुयी।

प्रातः काल जब संत तुकाराम प्रकृतिस्थ हुये तो उन्होंने अकेले रानाडे को विद्यमान देखकर प्रेम गद्गद् कंठ से कहा-"राना डे। धन्य हो तुम, आज तुम्हारे इस श्रेष्ठ कालीन ने प्रभु विठ्ठल के नृत्य का सौभाग्य प्राप्त क्रिया, भाऊ! तुमने भी भगवान के दर्शनों का अलभ्य लाभ लिया न" रानाडे नींद भरी आंखे मसलते हुए बोले-"कहां मेरा ऐसा भाग्य? मैं सारी रात ऊंघता ही रहा। न मैंने आपका कीर्तन सुना और न भगवान के दर्शन ही किये। मैं तो केवल कालीन का पल्ला पकड़े बैठा था कि कहीं कोई उसे उठाकर चलता न बने।"

संत तुकाराम कुछ वोले नहीं-केवल दो आंसू उनके नेत्रों से निकल कर रानाडे पर टपक पड़े।

संत मिलन का फल

श्री विजय पाठक

प्रणाम देवर्षि! किधर की यात्रा कर रहे हैं ? बहुत दिन हो गये, क्षीर सागर में अपने प्रभु का दर्शन नहीं कियां वहीं जा रहा हूँ। नारदजी ने कहा।

क्या हमें श्री प्रभु के दर्शन नहीं हो सकेंगे ? सुने थे, वे कृपा निधान हैं। अकारण करुण हैं। सन्त ने कहा वे किसपर, कब और किस प्रकार कृपा करते हैं, यह वहीं जानते हैं। मैं संसार में घूम-घूम कर उनके नाम का कीर्तन करने का उपदेश देता रहता हूँ। अतः वे सदा ही मुझपर प्रसन्न रहते हैं। कभी भी उनके पास जाऊँ, कोई रुकावट नहीं रहती। सदा उन्हीं के नाम का स्मरण इस तंबूरे पर करता झूमता घूमता रहता हूँ। उन्हें ऐसे भक्तों से काम है। जो उन्हें कभी न भूलें। कुछ मांगें भी नहीं। आखीर संसारी आदमी संसार ही तो मांगेगा। उससे ऊपर की वस्तु की कल्पना उसमें है ही कहाँ ? नारद जी बोले।

एक प्रार्थना है देवर्षि! आप कहे तो कह सकता हूँ।

बोलो सन्त! निर्भीक होकर कहो। यदि वह कार्य ठीक होगा तो मैं कर देने का वादा करता हूँ।

जिस प्रकार कुम्भार मिट्टी से हजारों घड़ों का निर्माण करता है, परन्तु वह स्वयं उन पात्रों का उपयोग नहीं करता; जिस प्रकार भवन निर्माण शिल्पी अपनी कला के कौशल द्वारा अनेकानेक भवनों का निर्माण करता है, परन्तु वह स्वयं उन भवनों में सज्जित नहीं होता; उसी प्रकार सर्वैश्वर्य युक्त सर्वाधिष्ठान ब्रह्म जगत् का निर्माण करके स्वयं उसमें सज्जित नहीं होते। ऐसे ही यह सर्वान्तयामी जीव मात्र में अवस्थित रहकर, इन्द्रियों का स्वामी ऋषिकेश कहलाकर मनबुद्धि प्राण वाणी आदि में भी सर्वतो भावेन निवास करके भी देह के भावों में सज्जित नहीं होता।

जब आप श्रीप्रभु के पास ही जा रहे हैं तो उनसे मेरे बारे में एक बात पूछते आइयेगा। वह यह कि दया निधान क्या कभी मुझे दर्शन देंगे ?

अच्छा, अच्छा,। अवश्य पूछता आऊँगा एक विशाल इमली के पेड़ के नीचे बैटे सन्त जी श्री प्रभु के ध्यान में मग्न हो गये कि देखें प्रभु क्या उत्तर देते हैं। प्रभु के स्मरण में कभी खड़े होते, कभी चलते चलते बैठ जाते। कभी जोर-जोर से प्रभु को पुकारने लगते। कितना प्रेम था प्रभु विष्णु भगवान् में सन्त जी का।

आइये देवर्षि !

बहुत समय बाद आपका दर्शन पा रहा हूँ। कहिये, सब कुशल तो है? विष्णु भगवान् ने पूछा।

हे हरि, जिसपर आप अनुकूल हों उसपर संसार का विविध ताप कहाँ असर करता है ? यूँ हीं घूमते, सन्तों से वार्तालाप करते, आपके धामों का अवलोकन करते लम्बा समय बीत गया। स्मरण आया कि चल कर धरा धाम का समाचार प्रभु से निवेदित करूँ। इस बहाने आप का देवदुर्लभ दर्शन भी मिलेगा।

नरद जी, आप हमें इसलिये परमप्रिय हैं कि

लोक कल्याण में सदारत रहते हैं। मेरी ही तरह आपका भी कौतुकी स्वभाव है। शत्रु-मित्र का द्विस्वभाव आपका भी नहीं है। जो भी करते हैं, वह कल्याण कामना से। अन्यथा हिरण्यकश्यपु की स्त्री पर कृपा करके उसे इन्द्र की तलवार के आघात से बचाकर अपने आश्रम में क्यों लाते। क्यों उसकी रक्षा की व्यवस्था करते ? बोलिये ! मैं क्या आप का हित साधन करूँ। मैं आज आपपर पूर्ण प्रसन्न हूँ। भगवान् नें कहा।

जिसकी प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये हजारों वर्ष ऋषिगण कठोरतम तप करते हैं, राजा लोग बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, आपके अनुगत सोऽशो-पचार की उत्तम सामग्री से अर्चना करते हैं और आपके अकिंचन भक्त नित्य आपका स्मरण, कीर्तन, नाम जप आदि करते हैं, नेत्रों में आँसू भरकर आपको पुकारते रहते हैं और आपके स्वरूप के चिन्तन द्वारा अपने को पवित्र बना लेते हैं। वे ही प्रभु मुझपर अहैतुक प्रसन्न हों तो क्या मांगना शेष रहा ?

अच्छा प्रभु, एक बात मैं भूल ही रहा था। जम्बू द्वीप में काशी के पूर्व भाग में एक विशाल इमली के वृक्ष के नीचे एक सन्त मुझे मिले। मुझे वे बहुत भले लगे उन्होंने कहा कि प्रभु से पूछूँ कि वे हमें कब दर्शन देंगे। क्या मैं यह जान सकता हूँ। उन्हें इसका उत्तर देने का वादा करके आया हूँ।

नारद जी! उस इमली के पेड़ में जितने पत्ते हैं उतने ही वर्षों बाद मैं उन्हें दर्शन दूँगा। आप समझ ही गये होंगे कि उन्हें उतने वर्षों के लिये कितनी बार जन्म ग्रहण करना होगा। आप यही उनसे कहे। अच्छा प्रभु! नारद का प्रणाम स्वीकार करें।

मेरा साष्टांग प्रणाम स्वीकार करें देवर्षि! सन्त जी भूमि पर लेटे भावमग्न हो गये।

नारदजी ने उन्हें उठाया। गले लगाया और पेड़ के नीचे कुशासन पर दोनों बैठे। कुशल मंगल के बाद वही पुराना प्रश्न सन्त जी ने दुहराया।

श्री प्रभु ने कहा है कि इस विशाल इमली के वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने ही वर्षों बाद दर्शन होगें। सन्त जी एकाएक उठकर खड़े हो गये। लगे नाचने और कीर्तन गाने। बीच-बीच में कहते-

मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, क्योंकि श्री प्रभु ने मेरा स्मरण किया है। मेरे भाग्य के द्वार खुल गये, प्रभु ने मेरा स्मरण कियां है। नाचते और गुणगान करते हुए इतने भावमग्न हो गये कि उन्हें अपना या देवर्षि की उपस्थिति का कोई ज्ञान ही नहीं रहा। नेत्रों से जल गिर रहे हैं। जड़ वस्तु के समान निस्पन्द हो गये हैं। बीच-बीच में एकाधबार नारायण-नारायण बोल देते हैं।

अरे ! यह क्या, श्री नारायण, शंख चक्रादि

कोई एक अंक लिखकर उसके दक्षिण भाग में आप जितने भी शून्य लिखते चले जायें, उतना ही वह अंक मूल्यवान होता चला जाता है। जबकि बाँयी ओर अवस्थित सहस्त्र शून्य भी अंक को अकेला ही रहने देते हैं।

यह शून्य ही ब्रह्म है। जो उसे दक्षिण भाग में अवस्थित करके पूजन करता है, वह अनन्त बन जाता है और उसे बाम भाग में अवस्थित करने वाला वामाभिमुखी, मात्र संसारी और मूल्य रहित है।

आयुध सहित प्रकट हो गये हैं। भक्त को उठा लिया है। मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं। संत जी भावमग्न होकर अपलक श्री प्रभु का दर्शन कर रहे हैं।

वर मांगो सन्त! हमारा दर्शन फलप्रद होता है। क्या चाहिये !

श्री प्रभु, आप के चरणों में अनन्य प्रीति के अलावा क्या चाहिये! बस, वही दीजिये एक बात और चाहता हूँ। आप कुछ क्षणों के लिये मेरी कुटिया को पवित्र कर दें। कुछ पूजा-अर्चना का अवसर मिल जाये, यही चाहता हूँ।

श्री प्रभु और देवर्षि बैठे हैं भक्त अर्चना की व्यवस्था में लगे हैं।

नारायण ! क्या कहूँ, आपका यह विनोदी स्वभाव कभी बहुत अच्छा लगता है और एकाधबार नहीं भी। आपने कहा कि इमली के पत्तों बराबर वर्ष बाद दर्शन दूँगा और यहाँ तो आप हमारे पीछे ही आ गये। आखिर ये भक्त तो मुझे झूठा ही कहेंगे? कृपया इसका रहस्य बतावें।

नारद ! तुमने अपने भक्ति सूत्र में लिखा है कि '''सात्वास्मिनपरमप्रेमरूपा,।'' जब इस भक्त ने तुमसे दर्शन के लिये पूछने का आग्रह किया उस समय इसमें भक्ति तो थी, परन्तु परम प्रेम रूपा बनी तुम्हारे जैसे उत्तम भक्त को पाकर फिर जब तुमने मेरा सन्देश इन्हें दिया, उस समय ये मेरे स्मरण का चिन्तन करने लगे। वह चिन्तन इन्हें भावोन्मत्त बना दिया। देह, गेह, नेह भुलाकर प्रेमोन्मत्त चिन्तन और अन्तःकरण के भावों के साथ स्मरण मुझे क्षीर सागर में लवमात्र भी रहने नहीं दिया और मैं भागकर यहाँ प्रकट हो गया। ''दर्शनादेव साधवः'', सन्त पुरुष केवल अपने दर्शन से ही जन्मान्तरों के भी पाप का समूल विध्वंस करके व्यक्ति को पवित्र बना देते हैं। भक्ति तो बहुतों के पास है परन्तु तुम्हारे जैसे लोग भक्तिं योग प्रदान अनायास ही कर देते हैं, फिर मेरा दर्शन तो शिशुपाल और दन्त वक्त्र भी पाये थे परन्तु भक्त की कृपा से प्राप्त भगवद् दर्शन कोई ही पाता है। अतः तुम झूठे नहीं बने। इनका यह सब सौभाग्य केवल तुम्हारे दर्शन का फल है।

साधजन मेरे हृदय हैं और उनका हृदय मैं हूँ। जो मेरे अलावा किसी को नहीं जानते, वे जिसपर कृपा करें मैं उनका आज्ञापालक बनकर इच्छित बात पूरी करता हूँ।

नारद जी समाधान पाकर बहुत ही आह्लादित हुए और सन्त जी का अतिथ्य ग्रहण करके दोनों अपने गन्तव्य की ओर चले गये।

◆

लहरों से उत्पन्न बुलबुला गर्व से फूला हुआ, अपने को समुद्र का अधिपति मानने लगता है। उसे क्या पता कि उसकी कुल आयु दोपल से ज्यादे की नहीं है। मनुष्य की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है।

मानव एवं मानवतत्व

श्री मारकण्डेय त्रिवेदी

प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो परमपिता द्वारा विचरित अनमोल कृति है जिसमें सोंचने विचारने की अपार क्षमता है बुद्धि, विवेक एवं नियंत्रता की अदम्य शक्ति है इसके बावजूद उसमें मानवीय गुणों का निरंतर ह्रास क्यों आता जा रहा है? आज का आदमी अपनीं क्षमता का उपयोग मनुष्यत्व को चरितार्थ करने में क्यों नहीं कर पा रहा है ? हमें जाना कहाँ था और हम जा कहाँ रहे हैं ?

मनुष्य योनि दुर्लभ है और यह जन्म जन्मान्तरों की अच्छी कमाई करने पर ही प्राप्त होती है मनुष्य योंनि वास्तव में वर्गभेद से परे है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार अपने जीवन के सत्य को स्थापित करने का मूलभूत व्यक्तिगत अधिकार है अपने जीवन में उसे उच्चकोटि का आनन्द अनोखा सौन्दर्य एवं वसुधैव कुटुम्बकम् कीं भावना से ओतप्रोत प्रेम एवं सहानुभूति जागृत करनी है। इसके लिये हमारे जीवन में धर्म की नितान्त आवश्यकता है। जिससे मानव, मानव के रूप में जीये एवं रहे। धर्म की परिभाषा धारणात् धर्मः यानी जिसे धारण किया जाय जैसे शरीर पर हम वस्त्र धारण करते हैं। महाराज मनु ने धर्म के दस लक्षण बतलाये हैं, जिनका अनुपालन समस्त मानव संसार के लिये श्रेयस्कर है।

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोऽधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

मनुष्य कहलाने के लिये अपरोक्त लक्षण एक कसौटी है। ये लक्षण मानव मात्र के लिये हैं ऐसा नहीं कि ब्राह्मण के लिये कुछ और अन्य वर्णों के लिये कुछ और निरंतर प्रयास द्वारा हर मनुष्य को मानवीय गुणों को इतना विकसित करना है कि उनके द्वारा योग्य मानवत्व चरितार्थ हो सके।

परोपकार एवं किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुंचाने की प्रवृत्ति का विकास भी मनुष्य कहलाने कें लिये अपेक्षित है।

अष्टादश पुराशोषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय, पापाय पर पीड़नम्।।

किसी से मत टकराओ एक दूसरे की सहायता करो यहीं तो मनुष्यत्व है। यदि किसी के बारे में कहा जाय कि अमुक आदमी सब कुछ है किन्तु इन्सान नहीं है तो प्रश्न उठता है यदि वह इन्सान ही नहीं है तो है क्या यानी कुछ भी नहीं यदि किसी ने कह दिया कि अमुक आदमी इन्सान नहीं हैवान है वह व्यक्ति तुरंत आदमी की श्रेणी छोड़ कर एक दूसरी श्रेणी में चला जाता है, और उसके विषय में किसी प्रकार की चर्चा नहीं की जा सकती।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करते समय उपाधि प्रदान का यह दीक्षामंत्र कि आपको विश्वविद्यालय की कुलपति की हैसियत से अमुक उपाधि दी जाती है और आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप अपने व्यावहारिक जीवन में इसका उपयोग करते हुए अपने को इस उपाधि के लिये योग्यतम सिद्ध करेगें और इस गुरुकुल का नाम और प्रतिष्ठा अक्षुण्य बनाने का प्रयास करेंगें।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य योनि समस्त योनियों में श्रेष्ट योनि है एवं इसकी सार्थकता मानवोचित व्यवहार एवं मानवधर्म के अनुशरण द्वारा ही सम्भव है।

आखिर हुआ क्या कि तुम मनुष्य का जन्म पाकर मनुष्य का जीवन नहीं जी सके ? हमारे जीवन में इतना भटकाव आ गया कि हम नाम मात्र के लिये मनुष्य कहलाने लगे। हमारे व्यवहार में इतनी मिलावट और गिरावट आ गयी कि सम्पूर्ण मानव समाज ही प्रदूषित हो गया जिसका लाभ राजनैतिक नेताओं ने खूब जमकर उठाया और उन्होंने जाति-पाँति रंग भेद, छूआ-छूत अगली पिछली एवं वर्ग भेद की समस्यायें उछाल-उछाल कर मानव एवं मानव समाज को अच्छाइयों के स्थान पर बुराइयों की ओर ढकेल दिया जिसके परिणाम स्वरूप जातीयता प्रान्तीयता, धर्मान्धता एवं कट्टर वादिता आदि बुराइयाँ बढ़ती गयीं पारस्परिक सहयोग के स्थान पर विद्वेष बढ़ता गया और मानवीय मूल्यों की इतनी गिरावट और छीछा लेदर हुई कि मनुष्य मनुष्योचित व्यवहार छोड़कर पशुवत् हो गया।

इस सम्बन्ध में मूलभूत तथ्य यह है कि मनुष्य जन्म से ही नहीं वरन् अपने आचरण से ही मनुष्य बन सकता है। उदाहरण के लिये पंडित शब्द का वाह्य आशय भले ही आप ज्ञानी या विद्वान से लगावें परन्तु वास्तव में पंडित वह है जिसकी व्यवहार की दृष्टि पंडित जैसी हो।

मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यन्ति स पंडितः।।

काम क्रोध से उपर रहने वाला जिसमें पराये धन के हड़पने की भावना न हो और जो अपनी भाँति सबको देखे ऐसा व्यक्ति चाहे किसी जाति या धर्म का हो पंडित कहा जा सकता हैं। आचार से हीन व्यक्ति चाहे भले ही ब्राह्मण या उच्च कुल में जन्म लिया हो उसे वेद भीनहीं पवित्र कर सकता-**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।** मनुष्य के लिये मानव धर्म है और बिना धर्म के मनुष्य पशु के समान हैं धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः।

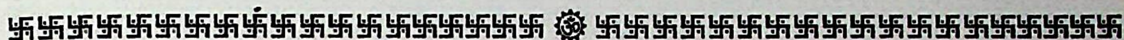
ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में परमपिता के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट आदि से वैश्य तथा अपांग से शूद्र की रचना का जो उल्लेख है वह तात्विक है शाब्दिक नहीं-इसके अनुसार प्रत्येक मानव के शरीर में उसका मुख ब्राह्मण है भुजा क्षत्रिय है पेट वैश्य है और अपांग प्रदेश एवं पैर शूद्र हैं हम किसी भी बिना पैर या मुख वाले पूर्ण व्यक्ति की कल्पना ही नहीं कर सकते। हर व्यक्ति को बोलने एवं भोजन करने के लिये मुख दिया गया है यह अंग इसके शरीर का ब्राह्मण है जिसके द्वारा क्या खाना है और क्या बोलना है का निर्णय विवेक पूर्ण दृष्टि से किया जाना है इसी प्रकार भुजा पेट और अपांग प्रदेश का उपयोग सम्पूर्ण शरीर के लिये उपयोगी रूप में होना है-क्या पैर को काटकर मानव पूरा कहा जा सकता है कदापि नहीं होता तो यह आया है कि प्रणाम करते समय ब्राह्मण एवं क्षत्रिय झुकते हैं चरणों पर जो कि शूद्र हैं।

आवश्यकता इस बात की है हम उन्मुक्त एवं निष्पक्ष विचारों द्वारा समाज की एक रुपता को अक्षुण्य बनायें तथा प्रदूषण की वर्तमान स्थिति से उबरने का प्रयास करें।

हाथ जब फूल के बिल्कुल निकट जा पहुंचा तो फूल ने पूछा- इस समय समीपता का क्या उद्देश्य है-बन्धु ?

उत्तर देते हुए हाथ ने कहा-तुम्हारे ऊपर उपकार करने आया हूं। देवता के समीप तुम्हें पहुंचाने का विचार है।

फूल उदास हो गया, उसने कहा-देवता तक सौभाग्यशाली पुष्प पहुंच ही जाते हैं। इन निरीह तितलियों और मधुमक्खियों के काम ही आता रहता और जहां जन्मा वहीं खाद बन कर गल जाता तो मेरे लिये अधिक सन्तोष की बात होती।





निष्ठुर दयामय

आचार्य सुदामा शुक्ल

अटपटा नहीं लगता आपको कि कोई निष्ठुर भी है और दयामय भी है ? शास्त्र और सन्त तो इन्हें अनन्त करुणा वरुणालय कहते हैं। यह श्री ब्रजराज बाबा नन्द का लाड़ला है ही अटपटा। सब के सब विरोधी धर्म इसमें अड्डा जमाकर बैठे हैं। इसलिये इनके सम्बन्ध में कोई भी एक बात सुनिश्चित नहीं कही जा सकती।

आप एक बार ग्रन्थों की ओर लोगों की बात छोड़ दें, अपनी श्रद्धा की बात भी रहने दें। संसार की ओर देखें तो आपको क्या इसका संचालक दयालु लगता है ? अकाल पड़ते ही रहते हैं। एक देश में न सही, दूसरे किसी देश में, भूख से तड़प-तड़प कर लोग कीड़ों के समान मरते हैं। माताएं गोद के बालकों को बेचकर दो मुट्ठी अन्न पाने को भटकती हैं।

अकेला अकाल ही तो नहीं है। बाढ़ रातों रात गाँव के गाँव बहा ले जाती है। प्रवाह में बहते पशुओं और मनुष्यों को किनारे खड़े लोग असहाय बने मृत्यु के मुख में जाते देखते रहते हैं। सुखी सम्पन्न परिवार, घड़ी भी नहीं बीतती कि लुप्त हो जाते हैं।

महामारियों की कोई गणना है ? प्रकृति कितने उत्पात करती है या कर सकती है यह कोई भी नहीं कह सकता। समुद्री तूफान, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी का विस्फोट, पता नहीं कितने प्रलयताण्डव चलते ही रहते हैं, सृष्टि में।

होने को तो संसार में पता नहीं कितने मिहिरकुल, हलाकू खाँ, नादिरशाह और तैमूरलंग हुए हैं। एक-एक स्थान पर लाख-लाख लोगों को मरवा देना, नगरों और गाँवों में आग लगा देना उनका मनोरंजन था।

इतिहास को न भी उलटें तो अभी इन्हीं एक दो दशकों में क्या संसार में कम नृशंस अत्याचार और नरसंहार हुए हैं। कई-कई देशों के शासकों ने अपने किसी प्रदेश की पूरी की पूरी जाति को नष्ट कर देने का क्रूरतम प्रयास किया।

यह सब सच होने पर भी परम सत्य यह है कि पूरे संसार के मनुष्य मिलकर भी सौ वर्षों में उतना संहार या उत्पात नहीं कर पाते, जितना प्रकृति का एक बड़ा उपद्रव पलक झपते कर डालता है। मनुष्य के उपद्रवों के विरुद्ध आक्रोश उठता है, किन्तु प्रकृति के उपद्रव के सन्मुख तो मनुष्य विवश है।

केवल अकाल, बाढ़, भूकम्प और महामारी के प्रकोप ही नहीं हैं। संसार के प्राणियों के इतिहास से परिचित लोग जानते हैं कि प्रकृति ने कैसे अनेक बार सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कितनी निर्दयता से किया है। पूरे महाद्वीप समुद्र गर्भ में विलीन हुए या हिम समाधि में सो रहे हैं। इतना ही नहीं तो सम्पूर्ण ग्रहों का भी विनाश होता है। इसी को हम आय-प्रलय कहते हैं।

विशेष अवसरों की बात जाने दीजिये। बहुत दारुण कथा है यह ! साधारण समय में ही आप किसी बड़े अस्पताल में चले जाइये। संसार में रोगों से ग्रस्त तड़पते लोग सब कहीं हैं। दरिद्रता के कारण अस्थिकंकाल बने दाने-दाने को तरसते बालक-वृद्ध भी सम्पन्न देशों में मिलते हैं।

केवल मनुष्यों की बात मैंने की, और वह भी अत्यन्त सांकेतिक ढंग से, किन्तु पशु पक्षी कीट पतंग क्या उसकी सृष्टि नहीं हैं। जिसने मनुष्य उत्पन्न किये हैं ? यदि सचमुच सृष्टि का न्यायाधीश अपने आसन पर

बैठ जाय और दूसरे प्राणियों को आभियोग उपस्थित करने का अवसर दे तो क्या स्थिति बनेगी ? उनके द्वारा ही क्या कम हिंसा होती है ? प्राणियों की सहस्त्र-सहस्त्र जातियों का उन्मूलन करने में मनुष्य लगा है। केवल सीधी हत्या नहीं, आज तो खोज बीन के नामपर या विलासिता की सामग्री के लिये लाखों प्राणियों पर पैशाचिक अत्याचार किये जा रहे हैं।

आप स्वयं किसी की हत्या न करें किसी को न सतावें, किन्तु आपके सामने कोई भूख से तड़पता हो, कोई किसी दुर्बल बालक या अबला पर अत्याचार करता हो और आप सम्पन्न हों, अच्छे चिकित्सक हों या बलवान हों, फिर भी चुपचाप देखते रहें, तटस्थ बने रहें तो आप को सज्जन कहा जा सकेगा ? आपको कोई ऐसी अवस्था में दयालु कहे तो यह आपकी प्रशंसा होगी या उपहास ?

कृष्ण सर्वज्ञ नहीं हैं ? सर्व समर्थ नहीं हैं ? सृष्टि में जो कुछ हुआ या हो रहा है वह किसी दूसरे की शक्ति से, संकेत से या समर्थन से हो रहा है ? हम धार्मिक भारतवासी तो शैतान जैसी कोई सत्ता ही नहीं मानते। तब विश्व का विधायक अत्यन्त निर्दय और निष्ठुर है, यह कहने में कोई अत्युक्ति है ?

लेकिन यह बात शास्त्र और सन्तों के सर्वथा विरुद्ध है। संत परम्परा से समर्थित तथ्य ही सत्य होता है और संत परम्परा का घोष है कि परमात्मा अनन्त दयालु है। कृपा करना ही उसका स्वभाव है। कृष्ण को दण्ड देना आता ही नहीं। वह तो विशुद्ध दयामय है।

प्रभुमूर्ति कृपा-मयी है। इसलिये हमको आपको अपने प्रत्यक्ष पर विचार करना पड़ेगा। अनेक बार तथ्य उसके सर्वथा विपरीत होता है, जैसा कि दिखाई पड़ रहा हो। बोतल में सदा शराब ही नहीं होती। उसमें गंगाजल भी हो सकता है और औषधि भी।

संसार की ओर देखते समय हम एक मूल बात ही भूल जाते हैं कि सब प्राणियों में जो चेतन है वह

'भंत! मैंने बज्रोली, कपाल भाति, जालन्धर आदि सिद्ध कर लिए है, भ्रसि का, भ्रमारी औ उज्जायी प्रणायामों का अभ्यास भी कर लिया है। अब मुझे आगे की साधना बताइएं।'' पीवक ने भगवान बुद्ध से दम्भपूर्वक कहा।

उसकी वाणी से टपक रहे अहंकार की गंध तथागत से छुपी न रह सकी। उन्होंने कहा ''अभी इसी साधना का अभ्यास करो। नियत समय पर अगली साधना बता दी जाएगी।

पीवक कहां से चला तो आया पर उसको संतोष नहीं हुआ। वह जिस भिक्षु के पास जाता कहता-''मैंने जो साधनायें सिद्ध कर लीं, न जाने क्यों तथागत उन्हीं को दुहराने की बात करते हैं। उससे मेरा समय नष्ट होगा या नहीं ?''

एक दिन ज्ञात हुआ कि पीवक ने संघाराम त्याग दिया तथा नगर की किसी स्त्री के साथ भाग गया। भिक्षुओं ने अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक यह सूचना जाकर तथागत को दी। उन्होंने हंसकर सहज स्वर में कहा-'' यह दोष उसका नहीं, महत्वाकांक्षा का हे। यह जहां भी रहेगी सर्वनाश ही करेगी चाहे वह योगी यती या तपस्वी ही कौन न हो।

अविनाशी है। उसमें परिवर्तन नहीं, विनाश नहीं, मृत्यु, रोग, अभाव प्रभृति केवल शरीर को प्रभावित करते हैं और शरीर अवश्यमेव नष्ट होने वाला है।

सौभाग्यवश मुझे एक पागल को देखने का अवसर मिला। उसने पता नहीं; कितने वर्षों से स्नान नहीं किया था। उसके शरीर पर लिपटा चिथड़ा दुर्गन्ध दे रहा था। शरीर पर फुन्सियाँ हो गयी थीं। तीन तगड़े लोगों ने उसे पकड़ रखा था। पागल चीख-चीख कर रो रहा था और हाथ पैर पटक रहा था। गाली दे रहा था।

उन लोगों ने उसके शरीर पर का चिथड़ा फाड़ फेंका, सीधे उतारना इसलिये कठिन था कि पागल चिथड़ों को दोनों हाथों से पूरी शक्ति से चिपटाये था, पागल को उनलोगों ने बल पूर्वक रगड़ रगड़कर मैल की तह छुड़ा रहे थे। इस पूरे समय पागल रोता तड़पता रहा। उसे स्नान द्वारा स्वच्छ करके कोई तेल लगा दिया और स्वच्छ नवीन कपड़े पहना दिये और चिथड़े जला दिये।

वे तीनों व्यक्ति क्या पागल के प्रति बहुत निष्ठुर थे? उन्होंने उसके चिथड़े जलाकर निर्दयता की ? जला न देते तो पागल शायद उन्हे फिर उठा लेता और आश्चर्य नहीं कि नये कपड़ों के ऊपर लपेट लेता। उन लोगों की पागल के प्रति सहानुभूति में कोई कमी थी ? उनमें यदि दया और सहानुभूति नहीं होती तो क्या वे ऐसा करते। आपको ऐसे मलिन वस्त्र पागल मिले नही? आपने भी कभी उन्हें नहलाने और उनके कपड़े बदलने का पुण्य किया है?

पागल तो रोवेगा ही। उसकी अपने चिथड़ों से बहुत आसक्ति है। वह गाली देगा, थूकेगा, मार भी सकता है। उसे संभालने की शक्ति चाहिये और बहुत दया, बहुत सहानुभूति चाहिये। उससे कुछ पाने की आशा तो कोई भी कर नहीं सकता। वह स्नान कराये जाने और नवीन कपड़े पाने पर प्रसन्न होकर प्रशंसा ही करेगा यह निश्चित नहीं है। वह तब भी चिथड़े के लिये रोता रह सकता है और गाली दे सकता है।

चेतन अमर है। अविनाशी भी है। चेतन ही कन्हाई का अपना है। कठिनाई यह है कि यह जीवन-चेतन पागल हो चुका है। वह चिथड़ों को चिपटाये है और उन्हीं चिथड़ों के मोह से दुःखी है। अपनी स्वच्छता का प्रयत्न तो वह स्वयं क्या करेगा ? कन्हाई उसे स्वच्छ करे तब भी वह उसे दारुण पीड़ा मानकर रोता चिल्लाता है।

कन्हाई को अनेकरूप ग्रहण करने पड़ते हैं। बहुत बार उसे ढेर सारे चिथड़ों की होली जला देनी पड़ती है। अनेक बार इन पागलों को स्नान कराने के लिये देर तक रगड़ना पड़ता है। इन सब प्रयत्नों में नन्दलाल निष्ठुर लगता है तो दोष किसका है ?

कोई नन्द नन्दन की ओर उन्मुख होता है तो यह उन्मुखता ही उसे स्वच्छ कर देती है। जिसमें भक्ति देवी का तनिक भी प्रकाश आया, वह शरीर से तो अनासक्त हो ही गया। कदाचित कभी असक्ति आ ही जाय तो आपने कभी सुना है कि संकट में किसी ने परमात्मा को पुकारा और उसको सहायता प्राप्त नहीं हुई ?

रोग और मृत्यु, उत्पात और आक्रमण बहाने हैं चिथड़ों को नष्ट करने के लिये। पागलों का, अज्ञानी जीवों का समुदाय न इन चिथड़ों की आसक्ति छोड़ता है न रोना बन्द करता है। किन्तु वह परम कृपालु, करुणानिधान अपनी स्वचछता के प्रयास बन्द कर दें तो क्या वह दयामय कहलायेगा ? ◆

जल में नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नाव में जल नहीं होना चाहिये। साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं, परन्तु साधक के भीतर संसार नहीं रहना चाहिये।



कृष्ण से आशा करना है?

श्री ललित नारायण मिश्र

आशा करने का भी कारण होता है। अकस्मात् कोई किसी से आशा नहीं करता। किसी ने संकट में सहायता की है, कोई किसी अवसर पर काम आया है, किसी ने वचन दिया है। ये सब या इनमें से कोई एक कारण न भी हो तब भी आशा की जाती है या हो जाती है। जिसकी प्रशंसा सुनी हो, जिनकी उदारता पर दूसरों को आस्था हो, सत्पुरुष जिसका विश्वास दिलाते हों, उससे कुछ आशा हो जाना परम स्वाभाविक है।

श्री ब्रजेन्द्र नन्दन के सम्बन्ध में तो ये सब की सब बातें हैं। शास्त्र और संत इन्हें उदार चक्र चूड़ामणि कहते हैं। इन्होंने स्वयं वचन दे रखा है कि "एकबार भी शरणागत होकर जो कह देता है-मैं तुम्हारा हूँ, उसे समस्त प्राणियों से अभय कर देता हूँ-यह मेरा ब्रत है। आप सचमुच हृदय पर हाथ रखकर कह सकते हैं, कि कृष्ण चन्द्र ने संकट में कभी आप की सहायता नहीं की? अथवा ये कभी आप के काम आये नहीं?

संसार में जितने प्राणी हैं, उनमें से कोई ऐसा नहीं जो संकट में पड़ा हो और असहाय हो गया हो, तब उसकी सहायता करने ये अलक्ष्य रहकर न पहुँच गये हों। पशु पक्षी, कीट, पतंग, सबकी सहायता करते हैं यह। पशुपक्षी आदि तो अनुभव की स्मृति कम ही रखते हैं, मनुष्य भी प्रायः द्विपाद पशु ही बना रहता है। उसका विवेक कम ही जागता है। संकट से उबर आने के थोड़ी ही देर पश्चात् भूल जाता है कि किसी ने अदृश्य रहकर उसकी सहायता न की होती तो पता नहीं उसकी कितनी दयनीय दशा हो जाती। उसका जीवन बच भी पाता या नहीं।

इस प्रकार आशा करने के जितने कारण हे, सब के सब वे विद्यमान हैं, इस कन्हाई में कि आप इनसे आशा करें। आप की आशा अनुचित है यह कहने का साहस किसी में नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि आशा इनसे ही करनी चाहिये। दूसरों से की गयी आशा सफल होगी इसमें सन्देह है। इसी कारण तुलसी बाबा ने कहा कि :-

देव दनुज मुनि नाग मनुजसब माया विवश बिचारे,
तिन्हके हाथ दास तुलसी प्रभु कहाँ अपनपौं हारे।।

अपने पिता या वात्सल्यमयी माता से की गयी आशा भी विफल हो जा सकती है। क्योंकि मनुष्य अल्प शक्ति है। देवताओं की शक्ति की भी एक निश्चित सीमा है।

एक प्रख्यात कथावक्ता उदाहरण देते थे। एक सकाम साधक ने देवी शीतला की आराधना की। देवी प्रसन्न होकर प्रकट हुईं। वरदान मांगने को कहा तो साधक ने अपने चढ़ने के लिये एक उत्तम घोड़ा माँगा।

शीतला ने डाँट दिया-मूर्ख ! मेरे पास घोड़ा होता तो मैं गधे पर बैठा करती ?

मनुष्य हो या देवता, परन्तु उसकी शक्ति की सीमा है। फिर कोई हजार-हजार दान करने वाला कल असहाय हो सकता है परन्तु मांगने वाले को पता न हो यह सम्भव है।

क्या आप सोचते हैं कि अनन्त शक्ति से विभूषित यह नन्हा कन्हाई भी रोगी, असहाय या दुर्बल हो सकता है ? इसकी याद मात्र से समस्त आधिव्याधि भागती है, यह देखी सुनी बात हैं कमला इसके संकेत देखती खड़ी रहती है। क्या यह भी कंगाल हो सकता है? इस अशरणशरण, दीनबन्धु, अनाथ नाथ, आर्तत्राता को निष्ठुर होना आता ही नहीं।

यह अवश्य है कि यदि आशा की पूर्ति में आपकी हानि है या अनाधिकार आशा आप कर रहे हैं, तो बात दूसरी है। किसी कुलपति का पुत्र मचल उठे कि पिता उसे डी.लिट्. की उपाधि का प्रमाण पत्र दे दें तो कुलपति पुत्र की ऐसी मांग, ऐसी आशा पूरी करेगा ? एक साधक के आग्रह पर एक सन्त ने उसे हनुमान जी का दर्शन कराया किन्तु उसके पश्चात साधक महोदय पागल हो गये। अनधिकारी की आशा पूर्ति का यह कुफल ही तो यह कहा जायेगा।

एक बात जरूर है कि आप कृष्ण से आशा करें और दूसरों का भी मुख ताकें, यह नहीं चलता। इसी से आशा करें। ऐसी स्थिति में यह त्वरित आशापूर्ति करता है। द्रौपदी जबतक बीर पाण्डवों की आशा करती रही, द्रोण, भीष्म और कृपाचार्य का मुख देखती रही, हाथों से जोर से अपने कपड़े पकड़े वहाँ उपस्थित जनों से रक्षा की आशा की तब तक ये चुपचाप ही रहे परन्तु दोनों हाथ उठाकर पुकारा तो भला कितनी देर लगी पहुँचते। गजेन्द्र को अपने बल का भरोसा रहा तो परिणाम क्या निकला यह आप जानते हैं। परन्तु इस करुणानिधान का आर्तस्वर में पुकारा तो तुरन्त उपस्थित होकर बचा लिया।

एक बात और, यदि आप अपना समस्त योगक्षेम इस योगेश्वर पर ही छोड़कर निश्चिन्त हो जायें तो यह आपके पुकार की प्रतीक्षा नहीं करेंगे। यह भी संभव है कि ऐसी स्थिति में आप आगे किसी संकट में पड़ने जा रहे हों तो यह अन्तर्यामी उससे बचाने काप्रबन्ध आज ही रच लिये हों। आपको तो पता तब चलता है, जब रक्षा हो जाये या व्यवस्था हो जाये।

गोरखपुर में वे गार्ड महोदय अब भी जीवित हैं। जिनकी अनुपस्थिति में ये नटवर नागर गोरखपुर से बरौनी तक सीटी बजाते, माल का ट्रेन से उतारना चढ़ाना कराते ले गये थे। सर्वत्र इनके हस्ताक्षर भी मिले जबकि गार्ड महोदय हरि-कीर्तन की धुन में मस्त होकर ट्रेन खुलने के समय पर नहीं पहुँच पाये थे।

उसी जिले में एक रेलवे का सिपाही भी अभी जीवित है जो ड्यूटी छोड़कर कीर्तन में जा रमा था और यहाँ एस.पी. साहब के निरीक्षणार्थ आने पर आपने सैलूट भी मारा और शस्त्रागार दिखाया। एस. पी. ने सब सही का हस्ताक्षर किया। लौटने पर प्रभु की अनुकम्पा का स्मरण करके वह घर जा कर प्रभु की सेवा-भक्ति में लीन हुआ।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

निर्मल मन होकर आप इनका स्मरण करे, इनका कीर्तन करें। फिर मांगना हो तो मांगें या सब इनपर छोड़ दें। इन्हें इतना ही चाहिये।

◆

अमृतांश

पूज्य श्री सुधांशु जी महाराज

गतांक से आगे —

जो अपने मन को इधर-उधर दौड़ाता है, धैर्य छोड़ देता है, वह टूट जाता है, जो स्थिर रहता है वह चोट खाकर भी नहीं टूटता है वह भगवान से कभी शिकायत नहीं करता, धन्यवाद के गीत गाता है।

प्रभु सबको शरण देता है, अद्वैत है, एक ही है, मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है-बन्धनों से मुक्ति, कोई भी बन्धन नहीं चाहता जहाँ-जहाँ बन्धन हैं, वहाँ-वहाँ दुःखी है जहाँ-जहाँ स्वतंत्र है, वहाँ-वहाँ सुखी है।

भगवान की शरण आनन्द का कारण है। संसार की शरण गया तो बंधन मिला, भय का बन्धन, भ्रम का बंधन, भोग का बंधन, भोग का बंधन उर्जा को नीचे खींच कर नष्ट करता है। भ्रम का बंधन अज्ञान है, भय का बंधन मनुष्य की बुद्धि को जकड़े रहता है।

भजन

जीवन की घड़ियाँ बेकार न खो, ऊँ जपो, हरि ऊँ जपो
स्वाँस-स्वाँस भक्ति करते हुये, रोम-रोम में प्रभु का
ध्यान करते हुये श्रद्धा के साथ गाइए।

ऊँ ही जग का सार है, जीवन का प्राणाधार है।
प्रीति न उसकी मन से तजो ऊँ जपो ऊँ जपो।।
पाप मिटावे ओम् है, हरि से मिलावे ओम् है।
चादर लम्बी तान ना सो, ऊँ जपो ऊँ जपो।।
ध्यान करो तो ओम् का, जाप करो तो ओम् का।
मन के मैल सब लेवो न धो। ऊँ जपो ऊँ जपो।।
साथी बनाओ ओम् को, मन में बसाओ ओम् को।
जीवन जग में है दिन दो, ऊँ जपो ऊँ जपो।।
चोला यही है कर्म का, करने का सौदा धर्म का।
इसके सिवा ना मार्ग कोई। ऊँ जपो ऊँ जपो।

हमारी कामना यही होनी चाहिए कि दस हजार वर्षों से हमारे ऋषि-मुनियों ने जो श्रृंखला बनाई है, उसी का चिन्तन करते हुये आगे बढ़ें। उसका सबको लाभ मिले।

मृत्योर्मा अमृतो गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
असतो मा सत् गमय

हे प्रभु-त्वमेकं शरणं। सच्ची शरण तो आपकी ही है वहाँ विश्रान्ति मिलती है जैसे नदी का आश्रय है सागर, उसी प्रकार हमारे आश्रय हैं आपके चरण। प्रभो हम तब तक भटकते रहेंगे, जब तक तेरी गोद नहीं मिलेगी। जहाँ जाकर मंजिल आ जाती है, सारे रास्ते बन्द हो जाते हैं। जब तक मंजिल न आ जाये वहीं तक चलते जाना है। थक कर बैठ जाना अच्छा नहीं है।

संसार में कितना ही माँगो शान्ति नहीं मिलेगी। भगवान की शरण अमृत की छाया है, उससे जितना दूर होते जायेंगे, उतना ही अशान्त होते जायेंगे। जितना ही सरल, सहज होगा उतना ही शान्त होगा। सरलता में-भोले भाव में परमात्मा नजदीक खड़ा रहता है। शंकर जी भोले-भाले हैं, सीधे के लिए भोले है। लेकिन टेढ़े के लिए भाला हैं। परमात्मा ही शरण स्थल हैं। हम जितने टेढ़े होकर उसके पास जायेंगे, वह उतना ही दूर सरकता जाता है। जो जितना बड़ा होगा उतनी ही सरलता होगी, सरलता ही बड़प्पन का गुण है।

हरि ऊँ

ईश्वर तुम्हीं दया करो, तुम बिन हमारा कोई नहीं।
गुरूवर दीनता हरो, तुम बिन हमारा कोई नहीं।।
माता तूं ही, पिता तूं ही, बन्धु तूं ही, सखा तूं ही
तूं ही हमारा आसरा, तुम बिन हमारा कोई नहीं।

मनुष्य आदतों का गुलाम बन जाता है, मालूम होते हुये भी आदतों से छूट नहीं पाता। नशे में नदी में रीछ कम्बल दीखता है, उसे पकड़ लेता है कम्बल समझकर, अब वो छोड़ता नहीं है तो कहता है कि कम्बल ने मुझे पकड़ लिया, छोड़ता नहीं है एक बार अज्ञानता में आकर गलत कदम उठा लिया तो फिर अब आदत आपको छोड़ती नहीं।

सही ज्ञान जाग्रत हो जाये, और मनुष्य अपने मन पर चोट लगाता जाये तो न जाने कब-कौन सी बात लग जाये तो छूट जाये।

दूसरों की गलती पर मनुष्य गुस्सा करता है, अपनी तरफ नहीं देखता जिस दिन अपने रूप को संभाल लेगा तो समझ लेगा कि दुनिया को दर्पण क्या दिखाना, अपने को दिखना है। मेरा रास्ता यह नहीं है अकेले बैठकर स्वयं सोचना शुरू कर दो अपना भला करने के लिए, अपना कल्याण करने के लिए तो सारा संसार बदल जायेगा। अपनी बुराइयों को समझकर उनको निकालो, बुरे लोगों से बचकर रहो।

ईसफ ने लिखा है कि मधुमक्खी भी परमात्मा ने बनाई, उसने भी अपना काम शुरू कर दिया, शहद इकट्ठा किया, देवता लोग निचोड़कर ले गये। मक्खियाँ ब्रह्मा जी के पास शिकायत लेकर गईं, कि लाखों फूलों का रस इकट्ठा करके मीठा बनाया, और लोग लेकर चले गये, उन्होंने उसे डंक दे दिया, इससे अपनी रक्षा करो। लेकिन डंक का प्रयोग, केवल अपनी रक्षा के लिए करना। नहीं तो बरैं और ततैयों की बराबरी में आ जावोगी, प्यार नहीं पा सकोगी, संसार में सुन्दर ढंग से जीने का यही तरीका है कि मिठास दो, लेकिन अपनी रक्षा भी करो।

सबसे पहला अज्ञान, का बन्धन है, अज्ञान से अपनी रक्षा करो। दूसरा बन्धन है भय-और भय की बेटी है 'चिन्ता'- चिन्ता का भोजन है उर्जा को खाना। नींद-प्रसन्नता, और लावण्यता का भोजन करती है सबसे पहले लावण्यता को ही खाती है भविष्य की चिन्ता-आज को खराब कर देती है भूल जाता है कि जिसने कल संभाला था वहीं कल संभालेगा जिसने आज दिया है, वह कल भी देगा। मालिक पर भरोसा रखो अपने सारे कार्य अपने भगवान को समर्पण कर दो। जैसे रखोगे वैसे ही रहूंगा, जहाँ रखोगे वहाँ ही रहूँगा। और किसका विश्वास चाहिए? वह शाहों का शाह है। फिर उसे संसार की कोई चाह नहीं रह जाती, हमें रोटी-रोजी देने वाला हमारा प्रभु है।

सभी प्राणियों की गति-मति वही है। भयंकर में भयंकरता, दयालु में दयालुता वही है रक्षा करने वालों का

सांसारिक मनुष्यों की बुद्धि और ज्ञान, ज्ञानियों की बुद्धि और ज्ञान के सदृश्य हो सकते हैं, सांसारिक मनुष्य तपस्वियों की तरह त्याग भी कर सकते हैं, किन्तु उनके प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। कारण इसका यह है कि उनकी शक्तियां ठीक मार्ग पर नहीं लगती। उनके सब प्रयत्न विषय भोग, मान और सम्पत्ति मिलने के लिए किए जाते हैं, ईश्वर से मिलने के लिए नहीं।

रक्षक बन कर वही है। वह सबको भोजन देता है, सारे संसार को वही देने वाला है देकर कभी भी अहंकार नहीं आना चाहिए। भोजन करने बैठो तो एक बार तो धन्यवाद दो हे भगवान-आपने दिया है- आपका प्रसाद पा रहा हूँ। आपका प्रसाद पाकर-मन-बुद्धि पवित्र हो, जिससे आपकी भक्ति कर सकूँ।

भगवान की कृपा से ही भोजन मिलता है, अन्न का अपमान मत करो। बचपन में अनाज बिखेर देते थे, तो दादी समझाती थी कि अनाज के दानों को मत बिखेरो, नहीं तो पक्षी बन कर दानें चुगना पड़ता है। भगवान ने कृपा की है तो भोजन मिलता है, नहीं तो हाथ का कौर भी छूट जाता है नहीं खा सकता इसलिए सदा भगवान को धन्यवाद देना चाहिए, उसकी कृपा को नहीं भूलना चाहिए। उसके उपकारों को भुला दे वह कृतघ्न है।

श्रद्धा और भाव ही मनुष्य को श्री प्रभु के चरणों तक पहुँचाते है। पूजा की सामग्रियाँ नहीं। घर में एक बोरा चावल रखकर यदि हम सोचें कि अब हमारी भूख समाप्त हो जावेगी तो यह अज्ञान मात्र ही है। बिना पकाये और बिना उपस्करों के उसे खानेवाला तुरन्त रोगी होकर अकाल में ही काल कवलित होगा।

अतः बहुत ज्ञान बटोरकर नहीं, उसे अनुभूति में लाकर और जीवन में उतारकर ही उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।

हरि ॐ

शरीर में से आत्मा निकल जाती है तो लोग उसको हाथ लगाने के बाद नहाते हैं। दया बाई, सन्त ने लिखा है कि जब तू जीता था, तब लोग तेरे से बातें करते थे, कभी सपने में आ जाते थे तो लोग खुश होते थें यदि मरने के बाद सपने में आ गये तो लोग डरते हैं। मानव-तू शरीर को इतना महत्व मत दे। महत्व परमात्मा का है। वह है तो तेरे चेहरे पर नूर चमकता है एक मुर्दे के पास रात में बैठना पड़ जाये तो रात मुश्किल हो जाती है। जीते में वहीं कितना अच्छा लगता था, लेकिन मरने पर डर लगता है।

इस आत्मा को संसार में नहीं-संसार के मालिक से जोड़ने का प्रयत्न करो। जप-ध्यान-सुमरण करो नहीं तो सेवा का कार्य करो। किसी गरीब के एक बच्चे को पढ़ाने का संकल्प करो। किसी का उजड़ा घर बसा दो, तुम्हारे घर में कभी कमी नहीं होगी। किसी गरीब की बेटी की शादी में सहयोगी हो जाओ, उन पैसों की बहुत महत्ता होगी। करके अपने को कभी सामने नहीं आने देना।

पालन करने वाला सबका पालन करता है। जैसे धरती में दिया हुआ बीज कई गुना बढ़कर वापस आता है, वैसे ही दिया हुआ कई गुना बढ़कर आता है। दिया हुआ दान ऐसा है जैसे घर में दीपक रखा है इस लोक में भी परलोक में भी प्रकाश करेगा।

अहंकार मत करो, भगवान ही कर्ता है। भगवान से कहो-भगवान आप ही कर्ता, भर्ता, संहरता हो। वही सत्ता है, चाहे--नास्तिक हो या आस्तिक। भगवान सबका पोषण करता है। और हम, भाई के बेटे और अपने बेटे में भी भेद करते हैं। जहाँ भेद होता है। वहीं संदेह

आकर खड़ा हो जाता है स्वार्थ आ जाने से संबंध-संबंध नहीं रहता, प्रेम नष्ट हो जाता है। त्याग ही संसार का केन्द्रं बिन्दु है।

कृपण-कंजूस आदमी भगवान को पसन्द नहीं है, कंजूस खुद खाता नहीं-पहनता नहीं, दूसरों के लिए छोड़कर चला जााता है, इतना बड़ा दाता है।

यदि मैं भगवान का बन्धु बनूँ तो ऐसा बनूं कि उसका बंधु कहलाने का अधिकार तो हो? उसको सखा मानते हो तो उसकी मंडली में बैठने लायक तो वनो? जिसके मन में भगवान की हिलोरें पैदा करता है वही इधर आता है यदि आपका मन इधर झुका है तो धन्यवाद देना भगवान को। और प्रार्थना करना यह हिलोरें कभी कम न होने देना। भगवान मुझे अहंकार कभी स्वप्न में भी न छू सके।

प्रायः देखा जाता है कि साधु पुरूषों को लोग विवादों में डाल देते हैं। परन्तु साधुजन न दुःखी होते हैं, न प्रसन्न ही। क्योंकि वे आत्मस्वरूपमय हैं। और आत्मा गुणाश्रयी नहीं है।

गंगा जबतक समुद्र में नहीं मिलती तबतक उसे लोगों को पवित्र करने का कार्य करना रहता है। समस्त अपवित्रताओं को भी समुद्रतक पहुँचाना होता है।

जैसे ही वह समुद्र में मिल जाती है, अपने कर्तव्य से भी छुटकारा पा जाती है। वह नाम-रूप हीन होकर अनन्त समुद्र बन जाती है। अब चाहे वह जल रहे, भाप बने, मेघ बने या वर्षारूप हो, उसे कोई चिन्ता नहीं।

हम जीवरूप में कर्म से बंधे हैं। पाप पुण्य सुख दुःखादि के भागी हैं। अनन्त नारायण की शरण में जाकर स्वयं भी अनन्त बनकर हम समस्त मनो व्यापार से रहित हो जाते हैं।

ईश्वरचन्द विद्यासागर बहुत बुद्धिमान थे, रामकृष्ण परमहंस से जाकर बोले कि भगवान कहाँ है? दिखावो उन्होंने हाथ हिलाकर बता दिया कि सर्वत्र हैं। पूछा-सबूत क्या है? तो बोले कि तुम्हें इतनी बुद्धि दी है यही सबसे बड़ा सबूत हैं, नदी-खाई-तालाब देखे थे, लेकिन विद्या का सागर आज ही देखा है ईश्वरचन्द ने कहा कि सागर में पानी खारा भरा है। उन्होंने कहा कि तू तो क्षीर सागर है-लेकिन थोड़ी देर लगेगी।

एक पिता ने अपने बच्चों से पूछा कि ब्रह्म के बारे में कहो, एक ने तो बहुत शास्त्रों की बातें की दूसरे ने कहा कि जहाँ जाकर मन-वाणी सब शान्त हो जाये, उसे कहने में मैं खामोश हूँ। राम कृष्ण ने कहा कि मैं भी कुछ नहीं कह सकता। चाहे कितना भी वर्णन करते रहो कभी भी महिमा पूर्ण नहीं हो पाती, जैसे चींटी शक्कर का भंडार खाली नहीं कर सकती। कितना भी कह लो, फिर भी उसकी महिमा पूरी कोई नहीं कर सकता।

प्यास पुरानी है, बहुत प्यास है, और ऋषि मुनियों का ज्ञान रूपी जल भी कभी पूर्ण नहीं हो सकता, इसमें से जितना जल ले सको लेकर जीवन बनाने की कोशिश करो।

हरि ऊँ

नारद मुनि का स्मरण आता है, जो चौदहों लोकों में भगवान की महिमा गाते हुये विचरण करते रहे। उन्होंने कहा कि भगवान को चढ़ाने को आठ पुष्प हैं, वे आठ फूल चढ़ाने से प्रभु को पाने की क्षमता आ जाती है।

अहिंसा-पहला फूल है। दूसरा-इन्द्रियों का निग्रह- (दमन)

हिंसक प्रवृति त्याग कर अहिंसक बनो। इन्द्रियों का द्वार संसार की तरफ खुलता है इसे संयमित करके भगवान की तरफ खोलो। तीसरा फूल है, दया-चौथा फूल है-क्षमा-पाँचवाँ शान्ति-हमारा हृदयं को कौन कहे, गला दबाने को तैयार हो जाते हैं। अपना कठोर हृदय लेकर जाते है। तो भगवान स्वीकार नहीं करते। छठा पुष्प-समन-करना। सातवाँ-ध्यान। सत्य-आठवाँ फूल है।

टेबुल पर गुलदस्ता लगा देते हैं कि यह याद रहे कि हर दम मुस्कुराते रहो। जब डंठल सहित फूल लेकर कहीं जाते हैं तो काँटे पत्ते सब रहते हैं लेकिन सबके ऊपर फूल खिले रहते हैं। इसी प्रकार जीवन में काँटे-पत्ते सब होंगे, लेकिन अपने को फूल जैसा कोमल-सुन्दर बनाये रहें। केवल फूल अधूरे है। जीवन में यह सब एक साथ ही रहते हैं।

जीवन पाया है तो इसमें सुख-दुःख दोनों रहेंगे यदि चिन्तन बदल जाये तो दूसरी बात है, नहीं तो सुख-दुःख दोनों रहेंगे।

देह धरे का दंड ये, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय।।

सुख-दुःख दोनों साथ रहते हैं जीवन में दोनों सहना पड़ता है।

एक मुरझाया हुआ फूल किसी पगडंडी पर पड़ा। महादेवी वर्मा ने देखा, उसे उठा लिया, लेकर कविता लिखने बैठ गयी। **था कली के रूप में अहो सूखे फूल।** तू क्या था, तेरी स्थिति क्या थी ? कभी तू कली के रूप में था।

था कली के रूप में, हो सूखे फूल, मुस्कुराता था,
खिलाती थी तुझे पवन।।
अंधेरी रात में निराशा की घड़ियों में लोग।।
विश्व में हे फूल तू सबके हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व फिर भी तू मुस्कुराता रहा।।
डाल से टूटा-सूख गया, मुरझाया हुआ पड़ा।
जब तेरी दशा पर लोग दुःखी नहीं हुए।
तो हम पर कौन आँसू बहायेगा ?

संसार बहुत स्वार्थी है।

जैसे फूल सबको लुभाने को तैयार है उसी प्रकार भगवान कहते है कि तू दाता बनकर जीना। फूल भक्त का प्रतीक है।

नारद ऋषि कहते हैं कि तुम परमात्मा को फूल चढ़ाने जावो तो फूल तोड़कर नहीं ले जाना, जीता ही फूल चढ़ाना है। भगवान के आँगन में फूल अगरबत्तियाँ है।, तोड़कर खराब मत करना।

आठ फूल हैं, उसका गुलदस्ता बनाकर चढ़ाओ, फिर देखो भगवान कितने प्रसन्न होते हैं।

प्रथम पुष्प - अहिंसा- हिंसा भाव को त्याग कर अहिंसक बन जाइए। हाथ के अस्त्र से ज्यादा जीभ के अस्त्र से हिंसा करते हैं। यदि एक ही कर्म से सर्वत्र विजय चाहते हो तो जीभ रूपी गऊ को खूंटे से बांधकर रखिए।

स्वयंवर में द्रौपदी के कहे हुये शब्द कर्ण नहीं भूल पाया। और सभा में द्यूत के समय कर्ण के शब्द द्रौपदी के प्रति कहे हुये, अर्जुन नहीं भूल पाया। पाण्डवों की सभा में भीम और द्रौपदी के कहे शब्द दुर्योधन नहीं भूल पाया। किसी से मतभेद नहीं करना यदि हो जाये तो क्षमा माँग लो।

संसार के रंग-मंच पर हर व्यक्ति अपना-अपना पार्ट कर रहा है। सबसे बड़ा युद्ध वाक्युद्ध है, इससे बड़ी-बड़ी हिंसा होती है।

लक्ष्मण जी ने कहा कि कैसी दुर्भाग्यपूर्ण वह घड़ी थी ? जब हम लोग सब एक दूसरे से दूर हो गये। मैंने आज्ञा का पालन नहीं किया इसीलिए मेरे ही दोष से विपत्ति आई, भइया कितना रोये, रघुकुल पर विपत्ति आई, सीता ने कहा कि दोष मेरा था, मैंने ही कडुवे वचन बोलकर तुम्हें जाने को विवश कर दिया था इन दुःखों का कारण केवल मेरे कडुवे वचन थे।

यह जीभ स्वर्ग को भी नरक में बदल देती है, शब्द गोल घेरा बनाकर वहीं खड़ा हो जाता है। शब्द नहीं बोले थे, तब तक स्वतंत्र थे, अब घेरे के बन्धन में आ गये। वह अपना फल लेकर आयेंगे, जो फल आयेगा खाना पड़ेगा। जैसे बीज बोये वैसे ही खाने पड़ते हैं।

आप अपने मन में बुरे भाव लेकर बैठे हैं, वह दूसरे आदमी के मन में कैच हो रहा है कभी न कभी विस्फोट होगा। इसलिए आप बुरा सोचना छोड़ दीजिए। भगवान से प्रार्थना करो कि हम किसी से बैर-भाव रख कर जलें नहीं।

जीवन को सुन्दर बनाओ, हृदय को साफ रखो, तभी भगवान हृदय में बैठेंगे। भगवान कहते हैं कि हम तो आये थे तुम्हारे हृदय में बैठने को लेकिन तुमने तो गैरों को बिठा रखा है, हम कहाँ बैठे ?

दिमाग से भी हम दूसरों को चक्कर में डालकर, बुद्धि की मार से दूसरों को चोट पहुँचा कर हिंसा करते हैं। बुद्धि का प्रयोग दुष्ट की दुष्टता मिटाने को किया जाये तो अच्छा है, लेकिन किसी को नीचा दिखाने को, अपमान करने को, अभिमान में अपनी बुद्धिमत्ता दिखाने को बुद्धि का प्रयोग करना हिंसा है।

मन, वाणी, बुद्धि में कोमलता लेकर प्रभु के पास जाओ दूसरा फूल है-दम-ये इन्द्रियाँ संसार में उलझाती है। भगवान से विमुख करती हैं। ये घोड़े हैं, इन पर नियंत्रण करो।

शरीर रथ है इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है।

आप स्वयं मालिक हो। मालिक पीछे बैठा है। यदि पाँच घोड़े पाँच दिशा में दौड़ेंगे तो मालिक की, रथ की क्या गति होगी ? इन घोड़ों का मुख एक दिशा में, परमात्मा की तरफ मोड़ो।

सब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को चाहती है, उधर ही दौड़ती है। लेकिन नारद जी कहते हैं कि सबको नियंत्रित करो। भगवान की तरफ एकाग्रता करो, मन शान्त हो जायेगा।

कृत्रिम सुगन्ध मन को भड़काती है, मन की चंचलता बढ़ाती है। लेकिन भगवान के दरबार में, सुगन्ध समर्पयामि, बोलते हैं, सुगन्ध अर्पण करते है, अगरबत्ती जलाते हैं। वो सुगन्ध मन की वासनाओं को समेट कर भगवान में लगाती है, वासनाओं को शान्त करती है। सुगन्ध का निषेघ नहीं है, रुप बदलना है। सुगन्धित स्थान पर बैठकर साधमा करने से मन को हिलोर से बाँधते हैं, मन एकाग्र होता है, वतावरण वनाना चाहिए। ◆



गीता की महिमा

स्वामी रामसुख दास
संकलनकर्ता : पं. रामानन्द चौबे

श्रीमद्भगवतगीता की महिमा अगाध और असीम है। यह भगवद्गीता ग्रन्थ प्रस्थानत्रयमें माना जाता है। मनुष्यमात्रके उद्धारके लिये तीन राजमार्ग 'प्रस्थानत्रय' नाम से कहे जाते हैं- एक वैदिक प्रस्थान है, जिसको 'उपनिषद्' कहते हैं; एक दार्शनिक प्रस्थान है, जिसको 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं और एक स्मार्त प्रस्थान है, जिसको 'भगवद्गीता' कहते हैं। ब्रह्मसूत्र में सूत्र है और भगवतगीता में श्लोक हैं। कहते हैं। उपनिषदों में मन्त्र हैं। इन श्लोकों में बहुत गहरा अर्थ भरा हुआ होने से इनको सूत्र भी कह सकते हैं। 'उपनिषद्' अधिकारी मनुष्यों के काम की चीज है और 'ब्रह्मसूत्र' विद्वानों के काम की चीज है; परन्तु 'भगवद्गीता' सभी के काम की चीज है।

भगवद्गीता एक बहुत ही अलौकिक, विचित्र ग्रन्थ है। इसमें साधक के लिये उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है, चाहे वह किसी भी देश का, किसी भी वेश का, किसी भी समुदाय का, किसी भी सम्प्रदाय का, किसी भी वर्ण का किसी भी आश्रम का कोई व्यक्ति क्यों न हो। इसका कारण यह है कि इसमें किसी समुदाय-विशेष की निन्दा या प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्व का ही वर्णन है। वास्तविक तत्त्व (परमात्मा) वह है; जो परिवर्तनशील प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों से सर्वथा अतीत और सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि में नित्य-निरन्तर एकरस-एकरूप रहनेवाला है। जो मनुष्य जहाँ है और जैसा है, वास्तविक तत्त्व वहाँ वैसा ही पूर्णरूप से विद्यमान है। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृतिजन्य वस्तु, व्यक्तियों में राग-द्वेष के कारण उसका अनुभव नहीं होता। सर्वथा राग-द्वेषरहित होने पर उसका स्वतः अनुभव हो जाता है।

हनुमान जी में अतुल सामर्थ्य, अतुल पौरुष और अतुल विज्ञान था। परन्तु वे उसे भूले रहते थे। सीता की खोज के लिये जाने के पूर्व जाम्बवान ने जब उनके सामर्थ्य का स्मरण कराया तब वे जाग कर हुंकार करने लगे।

इसी प्रकार एक राक्षस जब बलराम जी को पीठ पर बैठा कर आकाश मार्ग से भागने लगा और बलराम जी किंकर्तव्य विमूढ हो गये, तब श्री कृष्ण ने चिल्लाकर उनके अतुल सामर्थ्य का बोध कराया। तत्काल ही बलराम जी ने राक्षस को एक मुक्का मारा। वह रक्त वमन करता हुआ धराशायी हो गया।

हमलोग अन्तर में आत्मस्वरूप हैं, परन्तु अपने को व्यक्ति की सीमा में बाँधकर असहाय बने रहते हैं, कठिनाई का अनुभव करते हैं, दुखी होते हैं, और रोते हैं।

कोई गुरु यदि हमारे अन्तःकरण में उपस्थित अपार तेज और सामर्थ्य का दर्शन करा देता है, तब हम समस्त सिद्धयों के स्वामी बन जाते हैं, असाधारण और दिव्य कृतित्व से सम्पन्न हो जाते हैं। अन्यथा यह समस्त सृष्टि आत्मज्ञान रहित होकर दुखी है और सहायता के लिये परमुखापेक्षी है।

भगवद्गीता का उपदेश महान् अलौकिक है। इसपर कई टीकाएँ हो गयीं और कई टीकाएँ होती ही चली जा रही हैं, फिर भी सन्त-महात्माओं, विद्वानों के मन में गीता के नये-नये भाव प्रकट होते रहते हैं। इस गम्भीर ग्रन्थ पर कितना ही विचार किया जाय, तो भी

इसका कोई पार नहीं पा सकता। इसमें जैसे-जैसे गहरे उतरते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे इसमें से गहरी बातें मिलती चली जाती हैं। जब एक अच्छे विद्वान् पुरुष के भावों का भी जल्दी अन्त नहीं आता, फिर जिनका नाम, रूप आदि यावन्मात्र अनन्त है, ऐसे भगवान के द्वारा कहे हुए वचनों में भरे हुए भावों का अन्त आ ही कैसे संकता है?

इस छोटे-से ग्रन्थ में इतनी विलक्षणता है कि अपना वास्तविक कल्याण. चाहनेवाला किसी भी वर्ण, आश्रम, देश, सम्प्रदाय, मत आदि का कोई भी मनुष्य क्यों न हो, इस ग्रन्थ को पढ़ते ही इसमें आकृष्ट हो जाता है। अगर मनुष्य इस ग्रन्थ का थोड़ा-सा भी पठन-पाठन करे तो उसको अपने उद्धार के लिये बहुत ही सन्तोषजनक उपाय मिलते हैं। हरेक दर्शन के अलग-अलग अधिकारी होते हैं, पर गीता की यह विलक्षणता है कि अपना उद्धार चाहनेवाले सब के सब इसके अधिकारी हैं।

भगवद्‌गीता में साधनों का वर्णन करने में, विस्तारपूर्वक समझाने में, एक-एक साधन को कई बार कहने में संकोच नहीं किया गया है, फिर भी ग्रन्थ का कलेवर नहीं बढा है। ऐसा संक्षेप में विस्तारपूर्वक यथार्थ और पूरी बात बतानेवाला दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दीखता। अपने कल्याण की उत्कट अभिलाषा वाला मनुष्य हरेक परिस्थिति में परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर सकता है; युद्ध-जैसी घोर परिस्थिति में भी अपना कल्याण कर सकता है- इस प्रकार व्यवहार मात्र में परमार्थ की कला गीता में सिखायी गयी है। अतः इसके जोड़े का दूसरा कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

गीता एक प्रासादिक ग्रन्थ है। इसका आश्रय लेकर पाठ करने मात्र से बड़े विचित्र, अलौकिक और शान्तिदायक भाव स्फुरित होते हैं। इसका मन लगाकर पाठ करने मात्र से बड़ी शान्ति मिलती है। इसकी एक विधि यह है कि पहले गीता के पूरे श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ, फिर एकान्त में बैठकर गीता के अन्तिम श्लोक 'यत्र योगश्वरः कृष्णः.....- यहाँ से लेकर गीता के पहले श्लोक 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे....'- यहाँ तक. बिना पुस्तक के उल्टा पाठ किया जाय तो बड़ी शान्ति मिलती है। यदि प्रतिदिन पूरी गीता का एक या अनेक बार पाठ किया जाय तो इससे गीता के विशेष अर्थ स्फुरति होते हैं। मन में कोई शंका होती है तो पाठ करते-करते उसका समाधान हो जाता है।

वास्तव में इस ग्रन्थ की महिमा का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं है। अनन्तमहिमाशाली ग्रन्थ की महिमा का वर्णन कर ही कौन सकता है ?

गीता का खास लक्ष्य

गीता किसी वाद को लेकर नहीं चली है अर्थात द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, विशुद्धाद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद आदि किसी भी वाद को, किसी एक सम्प्रदाय के किसी एक सिद्धान्त को लेकर नहीं चली है। गीता का मुख्य लक्ष्य यह है कि मनुष्य किसी भी वाद, मत, सिद्धान्त को माननेवाला क्यों न हो, उसका प्रतयेक परिस्थिति में कल्याण हो जाय, वह किसी भी परिस्थिति में परमात्म प्राप्ति से वंचित न रहे; क्योंकि जीवमात्र का मनुष्ययोनि में जन्म केवल अपने कल्याण के लिये ही हुआ है। संसार में ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं है। जिसमें मनुष्य का कल्याण न हो सकता हो। कारण कि परमात्मतत्त्व प्रत्येक परिस्थिति में समान रूप से विद्यमान है। अतः साधक के सामने कोई भी और कैसी भी परिस्थिति आये, उसका केवल सदुपयोग करना है।

सदुपयोग करने का अर्थ है- दुःखदायी परिस्थिति आनेपर सुख की इच्छा का त्याग करना; और सुखदायी परिस्थिति आने पर सुखभोग का तथा 'वह बनी रहे' ऐसी इच्छा का त्याग करना और उसको दूसरों की सेवा में लगाना। इस प्रकार सदुपयोग करने से मनुष्य दुःखदायी और सुखदायी-दोनों परिस्थितियों से ऊँचा उठ जाता है अर्थात् उसका कल्याण हो जाता है।

सृष्टि से पूर्व परमात्मा में 'मैं एक ही अनेक रूपों में हो जाऊँ' ऐसा संकल्प हुआ। इस संकल्प से एक ही परमात्मा प्रेमवृद्धि की लीला के लिये, प्रेम का आदान-प्रदान करने के लिये स्वयं ही श्रीकृष्ण और श्रीजी (श्रीराधा) - इन दो रूपों में प्रकट हो गये। उन दोनों ने परस्पर लीला करने के लिये एक खेल रचा। उस खेल के लिये प्रभु के संकल्प से अनन्त जीवों की (जो कि अनादिकाल से थे) और खेल के पदार्थों (शरीरादि-) की सृष्टि हुई। खेल तभी होता है जब दोनों तरफ के खिलाड़ी स्वतंत्र हों। इसलिये भगवान् ने जीवों को स्वतन्त्रता प्रदान की। उस खेल में श्री जीका तो केवल भगवान् की तरह ही आकर्षण रहा, खेल में उनसे भूल नहीं हुई। अतः श्रीजी और भगवान् में प्रेमवृद्धि की लीला हुई। परन्तु दूसरे जितने जीव थे, उन सबने भूल से संयोगजन्य सुख के लिये खेल के पदार्थों (उतपत्ति-विनाशशील प्रकृतिजन्य पदार्थों) के साथ अपना सम्बन्ध मान लिया, जिससे वे जन्म-मरण के चक्कर में पड़ गये।

हम ज्ञानी भी कहलायें और संसारी भी बने रहें, यह भ्रम, दम्भ और पाखण्ड का रूप है। ज्ञान भगवान का स्वरूप है। श्रद्धा और विश्वास के साथ भक्ति का भी सम्मिश्रण करके ज्ञान को हृदय में उतारना लाभप्रद है। लोक वासना छोड़े बिना यह कहाँ सम्भव है ?

खेल के पदार्थ केवल खेल के लिये ही होते हैं, किसी के व्यक्तिगत नहीं होते। परन्तु वे जीव खेल खेलना तो भूल गये और मिली हुई स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके खेल के पदार्थों को अर्थात् शरीरादि को व्यक्तिगत मानने लग गये। इसलिये वे उन पदार्थों में फँस गये और भगवान से सर्वथा विमुख हो गये। अब अगर वे जीव शरीरादि उत्पत्ति- विनाशशील पदार्थों से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जायँ, तो वे जन्म- मरणरूप महान् दुःख से सदा के लिये छूट जायँ अतः जीवन संसार से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जायँ और भगवान् के साथ अपने नित्ययोग-(नित्य सम्बन्ध) को पहचान लें-इसी के लिये भगवद्गीता का अवतार हुआ है।

गीता का योग

गीता में 'योग' शब्द के बड़े विचित्र-विचित्र अर्थ हैं। उनके हम तीन विभाग कर सकते है।

(१) *'युजिर् योगे'* धातु से बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है-समरूप परमात्मा के साथ नित्य-सम्बन्ध; जैसे *'समत्वं योग उच्यते'* (२।४८) आदि यही अर्थ गीता में मुख्यता से आया है।

(२) *'युज् समाधौ'* धातु से बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है- चित्त की स्थिरता अर्थात् समाधि में स्थिति; जैसे

'यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया' (६/२०) आदि।
(३) 'युज् संयमने' धातु से बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है-संयमन, सामर्थ्य, प्रभाव, जैसे 'पश्य मे योगमैश्वरम्' (९।५) आदि।

गीता में जहाँ कहीं 'योग' शब्द आया है, उसमें उपर्युक्त तीनों में से एक अर्थ की मुख्यता और शेष दो अर्थों की गौणता है; जैसे-'युजिर् योगे' वाले 'योग' शब्द में समता- (सम्बन्ध) की मुख्यता है, पर समता आने पर स्थिरता और सामर्थ्य भी स्वतः आ जाती है। 'युज् संयमने' वाले 'योग' शब्द में सामर्थ्य की मुख्यता है, पर सामर्थ्य आने पर समता और स्थिरता भी स्वतः आ जाती है। अतः गीता का 'योग' शब्द बड़ा व्यापक और गम्भीरार्थक है।

जिनके अन्दर खोखलापन है, उनपर किसी उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता। मलयांचल पर्वत की हवा से उस पर्वत के सभी वृक्ष चन्दन की महक ग्रहण कर लेते हैं। हाँ ! बांस नहीं ग्रहण करता, क्योंकि उसके अन्दर स्वभावतः खोखलापन रहता है।

पातञ्जलयोगदर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को 'योग' नाम से कहा गया है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (१।२) और उस योग का परिणाम बताया है-द्रष्टा की स्वरूप में स्थिति हो जाना-'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम' (१।३)। इस प्रकार पातञ्जलयोगदर्शन में योग का जो परिणाम बताया गया है, उसी को गीता में 'योग' नाम से कहा गया है। (२।४८; ६।२३)। तात्पर्य है कि गीता चित्तवृत्तियों से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेदपूर्वक स्वतः सिद्ध सम-स्वरूप में स्वाभाविक स्थिति को योग कहती है। उस समता में स्थिति (नित्ययोग) होने पर फिर कभी उससे वियोग नहीं होता, कभी वृत्तिरूपता नहीं होती, कभी व्युत्थान नहीं होता। वृत्तियों का निरोध होने पर जो निर्विकल्प अवस्था होती है, पर समता में स्थिति होने पर 'निर्विकल्प बोध' होता है। 'निर्विकल्प बोध' अवस्थातीत और सम्पूर्ण अवस्थाओं का प्रकाशक है।

समता अर्थात् नित्ययोग का अनुभव कराने के लिये गीता में तीन योग-मार्गों का वर्णन किया गया है- कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। स्थूल सूक्ष्म और कारण-इन तीनों शरीरों का संसार के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। अतः इन तीनों को दूसरों की सेवा में लगा दे-यह कर्मयोग हुआ; स्वयं इनसे असङ्ग होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाय-यह ज्ञानयोग हुआ; और स्वयं भगवान् के समर्पित हो जाय-यह भक्तियोग हआ। इन तीनों योगों को सिद्ध करने के लिये अर्थात् अपना उद्धार करने के लिये मनुष्य को तीन शक्तियाँ प्राप्त हैं-
(१) करने की शक्ति (बल),
(२) जानने की शक्ति (ज्ञान) और
(३) मानने की शक्ति (विश्वास)

करने की शक्ति निःस्वार्थ भाव से संसार की सेवा करने के लिये है, जो कर्मयोग है; जानने की शक्ति अपनें स्वरूप को जानने के लिये है, जो ज्ञानयोग है, और मानने की शक्ति भगवान् को अपना तथा अपने को भगवान् का मानकर सर्वथा भगवान् के समर्पित होने के लिये है, जो भक्तियोग है। जिसमें करने की रुचि अधिक है, वह कर्मयोग का अधिकारी है। जिसमें अपने-आपको

जानने की जिज्ञासा अधिक है, वह ज्ञानयोग का अधिकारी है। जिसका भगवान पर श्रद्धा-विश्वास अधिक है, वह भक्तियोग का अधिकारी है। ये तीनों ही योग-मार्ग परमात्मप्राप्ति के स्वतन्त्र साधन हैं। अन्य सभी साधन इन तीनों के ही अन्तर्गत आ जाते हैं।

सभी साधनों का खास काम है-जड़ता से सम्बन्ध-विच्छेद करना। अतः जड़ता से सम्बन्ध-विच्छेद करने की प्रणालियों-(साधनों) में तो फरक रहता है, पर जड़ता से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर सभी साधन एक हो जाते हैं अर्थात् अन्त में सभी साधनों से एक ही समरूप परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। इस समरूप परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति को ही गीता ने 'योग' नाम से कहा है, और इसी को 'नित्ययोग' कहते हैं।

'अज्ञ' वह नहीं है जो कुछ नहीं जानता। ऐसा कोई नहीं जो कुछ भी नहीं जानता हो। ऐसी स्थिति में अज्ञ वह है जो श्रीहरि को नहीं समझता।

'विज्ञ' वह है जो सभी शास्त्रों को पढ़ा है और पूछने पर बतलाता भी है।

'प्रज्ञ' वह है जो ज्ञान से परिपूर्ण हे और जीवन में उस ज्ञान को उतार भी लिया है। ईश्वर में आस्था भी है, परन्तु एक सीमा तक।

'तज्ञ' वह है जो सत्संग, ज्ञान योग और उत्कृष्ट भक्ति योग की साधना पूर्ण कर लिया है। जिसके प्रसाद से श्रीप्रभु को तत्त्वतः जान गया है। उसे सर्वत्र ही परमात्मा का दर्शन अनवरत होता रहता है।

गीता में केवल कर्मयोग का, केवल ज्ञानयोग का अथवा केवल भक्तियोग का ही वर्णन हुआ हो-ऐसी बात भी नहीं है। इसमें उपर्युक्त तीनों योगों के अलावा यज्ञ, दान, तप, ध्यानयोग, प्राणायाम, हठयोग, लययोग आदि साधनों का भी वर्णन किया गया है। इसका खास कारण यही है कि गीता में अर्जुन के प्रश्न युद्ध के विषय में नहीं है, प्रत्युत कल्याण के विषय में हैं और भगवान् के द्वारा गीता कहने का उद्दृश्य ही युद्ध कराने का बिल्कुल नहीं है। अर्जुन अपना निश्चित कल्याण चाहते थे। (२। ७; ३।२; ५।१)। इसलिये शास्त्रों में जितने कल्याणकारक साधन कहे गये हैं, उन सम्पूर्ण साधनों का गीता में संक्षेप से विशद वर्णन मिलता है। उन साधनों को लेकर ही साधक-जगत् में गीता का विशेष आदर है। कारण कि साधक चाहे किसी मत का हो, किसी सम्प्रदाय का हो, किसी सिद्धान्त को माननेवाला हो, पर अपना कल्याण तो सबको अभीष्ट है।

साधन की दो शैलियाँ

ज़ीव में एक तो चेतना परमात्मा का अंश है और एक जड़ प्रकृति का अंश है। चेतन-अंश की मुख्यता से वह परमात्मा की इच्छा करता है और जड़-अंश की मुख्यता से वह संसार की इच्छा करता है। इन दोनों इच्छाओं में परमात्मा की इच्छा तो पूरी होने वाली है, पर संसार की इच्छा कभी पूरी होने वाली है ही नहीं। कुछ सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति होती हुई दीखने पर भी वास्तव में उनकी निवृत्ति नहीं होती, प्रत्युत संसार की आसक्ति के कारण नयी-नयी कामनाएँ पैदा होती रहती

हैं। वास्तव में सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति अर्थात् सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति इच्छा के अधीन नहीं है, प्रत्युत कर्म के अधीन है। परन्तु परमात्मा की प्राप्ति कर्म के अधीन नहीं है। स्वयं की उत्कट अभिलाषा मात्र से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कर्म का आदि और अन्त होता है; इसलिये उसका फल भी आदि-अन्तवाला ही होता है। अतः आदि-अन्तवाले कर्मों से अनादि-अनन्त परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? परन्तु साधकों ने प्रायः ऐसा समझ रखा है कि जैसे क्रिया की प्रधानता से सांसारिक वस्तु की प्राप्ति होती है। ऐसे ही परमात्मा की प्राप्ति भी उसी प्रकार क्रिया की प्रधानता से ही होगी, और जैसे सांसारिक वस्तु की प्राप्ति के लिये शरीर-इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि की सहायता लेनी पड़ती है, ऐसे ही परमात्मा की प्राप्ति के लिये भी उसी प्रकार शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि की सहायता लेनी पड़ेगी। इसलिये ऐसे साधक जड़ता-(शरीरादि-) की सहायता से अभ्यास करते हुए परमात्मा की तरफ चलते हैं।

जैसे ध्यानयोग में दीर्घकाल तक अभ्यास करते-करते अर्थात् परमात्मा में चित्तको लगाते-लगाते जब चित्त निरुद्ध हो जाता है, तब उसमें संसार की कोई इच्छा न रहने से और स्वयं जड़ होने के कारण परमात्मा को ग्रहण न कर सकने से वह (चित्त) संसार से उपराम हो जाता है। चित्त के उपराम होने से साधक का चित्त से अर्थात् जड़ता से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और वह स्वयं से परमात्मतत्त्व का अनुभव कर लेता है (गीता ६/२०)। परन्तु जो साधक आरम्भ से ही परमात्मा के साथ अपना स्वतःसिद्ध नित्य-सम्बन्ध मानकर और जड़ता से अपना किन्चिन्मात्र भी सम्बन्ध न मानकर साधन करता है, उसको बहुत जल्दी और सुगमतापूर्वक परमात्मतत्त्व का अनुभव हो जाता है।

इस प्रकार परमाततत्व की प्राप्ति चाहनेवाले साधकों के लिये साधन की दो शैलियाँ हैं। जिस शैली में अन्तःकरण की प्रधानता रहती है अर्थात् जिसमें साधक जड़ता की सहायता लेकर साधन करता है, उसको 'करण-सापेक्ष-शैली' नाम से और जिस शैली में स्वयं की प्रधानता रहती है अर्थात् जिसमें साधक आरम्भ से ही जड़ता की सहायता न लेकर स्वयं से साधन करता है, उसको 'करण-निरपेक्ष-शैली' नाम से कह सकते हैं। यद्यपि इन दोनों ही साधन-शैलियों से परमात्मतत्त्व की प्राप्ति करण-निरपेक्षता से अर्थात् स्वयं से (जड़ता से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होने पर) ही होती है, तथापि 'करण-सापेक्ष-शैली' से चलने पर उसकी प्राप्ति शीघ्रता से होती है

(१) करण-सापेक्ष-शैली में जड़ता (शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि) का आश्रय लेना पड़ता है, पर करण-निरपेक्ष-शैली में जड़ता का आश्रय नहीं लेना पड़ता, प्रत्युत जड़ता से माने हुए सम्बन्ध का विच्छेद करना पड़ता है।

(२) करण-सापेक्ष-शैली में एक नयी अवस्था का निर्माण होता है, पर करण- निरपेक्ष- शैली में अवस्थाओं से सम्बन्ध-विच्छेद होकर अवस्थातीत तत्त्व का अनुभव होता है।

(३) करण-सापेक्ष-शैली में प्राकृत शक्तियों (सिद्धियों) की प्राप्ति होती है, पर करण-निरपेक्ष-शैली में प्राकृत शक्तियों से सम्बन्ध-विच्छेद होकर सीधे परमात्म तत्व का अनुभव होता है।

(४) करण-सापेक्ष-शैली में कभी तत्काल सिद्धि नहीं मिलेगी, पर करण-निरपेक्ष-शैली में जड़ता से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होने पर, अपने स्वरूप में स्थित होने पर अथवा भगवान् के शरण होने पर तत्काल सिद्धि मिलती है।

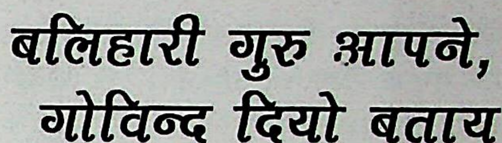
पातञ्जलयोगदर्शन में तो योग की सिद्धि के लिये करण-सापेक्ष-शैली महत्व दिया गया हे, पर गीता में योग की सिद्धि के लिये करण-निरपेक्ष-शैली को ही महत्व दिया गया है। परमात्मा में मन लगा गया, तब तो ठीक है, पर मन नहीं लगा तो कुछ नहीं हुआ-यह करण-सापेक्ष -शैली है। परमात्मा में मन लगे या न लगे, कोई बात नहीं, पर स्वयं परमात्मा में लग जाय-यह करण-निरपेक्ष- शैली है। तात्पर्य यह है कि करण-सापेक्ष-शैली में परमात्मा के साथ मन-बुद्धि का सम्बन्ध है, और करण-निरपेक्ष-शैली में मन-बुद्धि से सम्बन्ध- विच्छेदपूर्वक परमात्मा के साथ स्वयं का सम्बन्ध है। इसलिये करण-सापेक्ष-शैली में अभ्यास के द्वारा क्रम से सिद्धि होती है, करण-निरपेक्ष-शैली में अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। कारण कि स्वयं का परमात्मा के साथ स्वतः सिद्ध नित्य-सम्बन्ध (नित्ययोग) है। अतः भगवान् से सम्बन्ध मानने अथवा जानने में अभ्यास की आवश्यकता नहीं है; जैसे-विवाह होने पर स्त्री पुरुष को अपना पति मान लेती है, तो ऐसा मानने के लिये उसको कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। इसी तरह किसी के बताने पर 'यह गंगाजी है'-ऐसा जानने के लिये भी कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। करण-सापेक्ष-शैली में तो अपने लिये साधन करने (क्रिया-) की मुख्यता रहती है, पर करण-निरपेक्ष-शैली में जानने (विवेक) और मानने-(भाव) की मुख्यता रहती है।

'मेरा जड़ता-(शरीरादि-) से सम्बन्ध है ही नहीं' -ऐसा अनुभव न होने पर भी जब साधक इसको आरम्भ से ही दृढ़तापूर्वक मान लेता है, तब उसे ऐसा ही स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जैसे वह 'मैं शरीर हूँ और शरीर मेरा है'-इस प्रकार गलत मान्यता करके बँधा था, ऐसे ही 'मैं शरीर नहीं हूँ और शरीर मेरा नहीं है'-इस प्रकार सही मान्यता करके मुक्त हो जाता है; क्योंकि मानी हुई बात न मानने से मिट जाती है- यह सिद्धान्त है। इसी बात को भगवान् ने गीता में कहा है कि अज्ञानी मनुष्य शरीर से सम्बन्ध जोड़कर उससे होनेवाली क्रियाओं का कर्ता अपने को मान लेता है- **अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'** (३/२७)। परन्तु ज्ञानी मनुष्य उन क्रियाओं का कर्ता अपने को नहीं मानता-**नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्'** (५/८)। तात्पर्य यह हुआ कि अवास्तविक मान्यता को मिटाने के लिये वास्तविक मान्यता करनी जरूरी है। ***(क्रमशः)*** ◆

वस्तु का गुण, उसके प्रयोक्ता के कारण अच्छा या बुरा बन जाता हैं दिया सलाई में पचास शलाकाएं रहती हैं। वे पचास घरों में दीपक जलाकर प्रकाशमय कर सकती हैं, पचास घरों के चूल्हों को जलाकर सबको भोजन प्राप्त करा सकती हैं। परन्तु यदि विनाश के लिये उनका उपयोग हो तो हजारों गाँवों को जलाकर लाखों व्यक्तियों को बे घरबार कर सकती हैं।

इन शलाकाओं का दूसरा विशिष्ट कार्य ये कि घास-फूस के सूखे अलावों को केवल एक शलाका क्षण भर में राख का ढेर बना सकती हैं और पेट्रोल छिड़की हुई लकड़ी की बड़ी-बड़ी सिल्लियों को भस्म का ढेर बना सकती हैं। परन्तु भीगी लकड़ी को पचासों शलाकाएँ मिलकर भी प्रभावित नहीं कर सकतीं।

भगवत प्रेम से आर्द्र हृदयवाले सज्जनों को संसार रूपी अग्नि, अपने ताप से प्रभावित नहीं कर सकती। तृष्णा से जर्जर और मृगतृष्णा से व्याकुल लोगों को ही यह संसाराग्नि प्रकार-प्रकार के कष्ट देती रहती है।



अखण्ड ज्योति

गुरु नहीं होते तो गोविंद का, परमात्मा का परिचय कौन कराता ? परमात्मा अपने चारों ओर व्याप्त है। भीतर भी और बाहर भी, सभी दिशाओं को आच्छादित किए हुए है, लेकिन उसकी अनुभूति नहीं होती, क्योंकि अनुभव करने वाली चेतना विकसित नहीं हुई। जिस सत्ता के सान्निध्य, संसर्ग और अनुग्रह से वह चेतना जागती है, उसका नाम 'गुरु' है। अपने भीतर विद्यमान ब्रह्मसत्ता का बोध कराने के कारण ही गुरु को परमात्मा से भी महान् माना गया है। कबीर जब अपनी समस्या गाते हैं कि 'गुरु गोविंद दोउ खड़े काकें लागूँ पाँय' तो वह सिर्फ छंद का ही विषय नहीं है, समस्या व्यावहारिक भी है। किसका अनुग्रह ज्यादा है, गुरु का या परमसत्ता का? कबीर स्वयं ही उत्तर देते हैं कि गुरु ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उन्हीं पर निछावर होना चाहिए, क्योंकि परब्रह्म को बताने का श्रेय उन्हें ही जाता है, समाधान करते हुए वे गाने लगते हैं, 'बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।'

भारतीय परंपरा गुरु को ब्रह्म से भी श्रेष्ठ और महान् मानती रही है। व्यास पूजा के समय आषाढ़ पूर्णिमा के दिन नर्मदा के किनारे ओंकारेश्वर क्षेत्र में आदि शंकराचार्य ने गुरु की वंदना की थी, 'गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।' संन्यास-दीक्षा देते हुए गुरु आदि शंकर के गुरु श्री गोविंद पादाचार्य ने शिष्य से दक्षिणा माँगी थी कि वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करना है। दक्षिणा चुकाने पर लौकिक-अलौकिक सत्ताएँ सहयोग करेंगी, अनुवर्ती बनेंगी।

गुरु को परब्रह्म श्रद्धावश या अनुग्रह मानने, कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए ही नहीं बताया गया है। गुरु परब्रह्म की प्रतिनिधि सत्ता नहीं परब्रह्म ही है, यह एक तथ्य है। गुरु की वंदना में लिखे गए इस श्लोक की व्याख्या करते हुए स्वामी अखंडानंद सरस्वती ने वेदांत पर एक प्रवचन में कहा है, गुरु एक आदर्श है, जिसे शिष्य को प्राप्त करना है। वास्तव में मूल गुरु और भगवान् अपने भीतर ही हैं। उन्हें देख और समझ पाना कठिन है, इसलिए अपने बाहर उनकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है, अन्यथा वह अपने भीतर ही बसे हुए हैं। अपने भीतर निहित पूर्णता को एक स्थूल स्वरूप में देखना-अपनाना हो तो वह गुरु ही है।

अध्यात्म मार्ग पर बहुत आगे तक गए, परमसमाधि या पूर्णता तक पहुँचे संतों, आचार्यों और सिद्धों ने अपनी प्रत्येक गतिविधि का आरंभ गुरु को प्रणाम करते हुए ही किया। उनके उपदेश, शिक्षाओं या प्रेरणाओं को हृदय में धारण किया और पूर्णता तक पहुँचे। आवश्यक नहीं कि गुरु ने लंबे समय तक अपने सान्निध्य में रखा हो। कुछ पल का साथ भी कायाकल्प कर गया। संत कबीर ने अपने गुरु स्वामी रामानंद की एक झलक भर देखी थी।

उनके संबंध में प्रसिद्ध है कि काशी के एक घाट पर कबीर को कुछ क्षण के लिए गुरु का संसर्ग मिला। इन क्षणों में स्वामी रामानंद ने सिर्फ राम-राम ही कहा था। राम नाम का दो बार उच्चारण कबीर की

चेतना में गुरुसत्ता को प्रकट कर गया। कबीर जीवनभर राम नाम की महिमा गाते रहे। उनके राम 'परब्रह्म' के नायक ही थे। दशरथनंदन आवतारी राम उनके इष्ट-आराध्य नहीं थे, स्वामी रामानंद अवतारी राम की आराधना करते थे, लेकिन उनके आशीष ने कबीर के भीतर निर्गुण राम की भक्ति जगाई। कबीर के भीतर विकास की जो संभावना थी, वहीं उनमें प्रकट हुई कबीर ने फिर भी गुरु को परमात्मा से महान् ही माना। अपने गुरु का स्मरण करते हुए उन्होंने गाया, ''काशी में हम प्रकट भए, रामानंद चेतायो।''

गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित मानने वाले आदि शंकराचार्य को भी अपने गुरु का सान्निध्य थोड़े समय के लिए ही मिला था। उस सान्निध्य को शिष्य ने पूरी पात्रता से अंगीकार किया और युगांतरकारी सामर्थ्य अर्जित की। उस सामर्थ्य के साथ अपने भीतर परब्रह्म को प्रकट किया, वे कह सके कि मै। ही ब्रह्म हूँ 'अहं ब्रह्मास्मि।' गुरु का प्रत्यक्ष सान्निध्य उतना आवश्यक नहीं है जितना ग्रहणशील होना। गुरुसत्ता के प्रति जितना खुलापन, विनय और समर्पण का भाव होगा, उसका वैभव उतना ही ज्यादा और पूर्णता में व्यक्त होगा।

परमपूज्य गुरुदेव को अपनी मार्गदर्शक सत्ता का प्रत्यक्ष सान्निध्य नौ दिन से ज्यादा नहीं मिला। वह भी कई अंशों में। वे बताया करते थे कि पैंसठ वर्ष के साधक और सिद्ध जीवन में अलग-अलग अवसरों पर मिले सान्निध्य को जोड़ लिया जाए, तो वह नौ दिन के बराबर ही बैठता है। लेकिन गुरु का अनुग्रह पाने के लिए जिस समर्पण की आवश्यकता थी, वह प्रथम दर्शन में ही सिद्ध हो गई थी। गुरुदेव की मार्गदर्शक सत्ता जिन्हें अखण्ड ज्योति पत्रिका के सदस्य ''दादा गुरु' के रूप में स्मरण करते हैं, पिछले कई जन्मों से उनका ध्यान रखे हुए थी। अपने वर्तमान लीलारूप का उल्लेख करते हुए गुरुदेव ने अपनी मार्गदर्शक सत्ता के बारे में स्वयं लिखा है, घटनाक्रम पंद्रह वर्ष की आयु से आरंभ होता है, जिसे अब साठ वर्ष से अधिक हो चले। इससे पूर्व की अपरिपक्व बुद्धि कुछ कठोर दृढ़ता अपनाने की स्थिति में भी नहीं थी और न ही मन में उतनी तीव्र उत्कंठा थी। आरंभिक दिनों में उठती जिज्ञासा ने तद्विषयक अनेक पुस्तकों को पढ़ने एवं इस क्षेत्र के अनेकों प्रतिष्ठित लोगों ने पूछताछ करने की प्रक्रिया पूरी साहसिकता से अपनाई। उससे भी समाधान नहीं हुआ, तो उत्कंठा अंतरिक्ष में भ्रमण करने लगी और एक पारंगत समाधानी को सहायता के लिए ढूँढ़ लाई।

अखण्ड ज्योति के फरवरी १९८५ अंक में पूज्य गुरुदेव ने इन पंक्तियों में मार्गदशक सत्ता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए प्राथमिक तैयारी का विवेचन किया है। उत्कंठा हो तो गुरु प्रकट होते हैं, प्यास हो तो पानी भी प्रकट होता है, धरती सूख रही हो और वर्षा की गुहार मचे तो बादल सभी रिक्तियों को भर देते हैं, पुकार हो तो परमात्मा भी दौड़े आते हैं। गुरुसत्ता भी अपने शिष्य को उसी तरह खोजती, चुनती और उपयुक्त स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रतीक्षा करती है।

पंद्रह वर्ष की आयु में गुरुदेव के सामने उनकी मार्गदर्शक सत्ता प्रकट हुई। पूज्यवर लिखते हैं कि वह प्रकट होना भी एक अवसर था। उनके प्रकट होने पर मन में जो सवाल उठे, उनके बारे में मार्गदर्शक सत्ता ने क्या कहा, यह पूज्यवर के शब्दों में ही, ''देवात्माएँ जिनके साथ संबंध जोड़ती हैं, उन्हें जाँचती-परखती भी

हैं। अपनी शक्ति और समय खरच करने से पूर्व कुछ जाँच-पड़ताल भी करती हैं। जो भी चाहे, उसके आगे प्रकट होने लगें और उसका इच्छित प्रयोजन पूरा करने लगें, ऐसा नहीं होता। पात्र-कुपात्र का अंतर किए बिना चाहे जिसके साथ संबंध जोड़ना किसी बुद्धिमान और सामर्थ्यवान् के लिए कभी कहीं संभव नहीं होता।''

'हमारी वसीयत और विरासत' पुस्तक में पूज्य गुरुदेव की ये पंक्तियाँ गुरु द्वारा शिष्य के लिए अपनाई जानेवाली कसौटियाँ हैं। उनकी मार्गदर्शक सत्ता गुरुदेव को चुनने और उन्हें अपनी संपूर्ण शक्तियाँ-विभूतियाँ हस्तांतरित करती है। उस हस्तांतरण का उद्देश्य बताते हुए गुरुदेव अपनी आत्मकथा में उद्धृत करते हैं, ''हम सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे सत्पात्र की तलाश करते रहे, जिसे सामयिक लोक कल्याण का निमित्त बनाने के लिए प्रत्यक्ष कारण बताएँ। हमारा यह सूक्ष्मशरीर है। सूक्ष्मशरीर से स्थूल कार्य नहीं बन पड़ते। इसके लिए किसी स्थूलशरीरधारी को ही माध्यम बनाना और शस्त्र की तरह प्रयुक्त करना पड़ता है। यह विषम समय है। इसमें मनुष्य का अहित होने की अधिक संभावनाएँ हैं। जो कमी है, उसे दूर करना है। अपना मार्गदर्शन और सहयोग देना है। अब तक तुम अपने सामान्य जीवन से ही परिचित थे। अपने को साधारण व्यक्ति के रूप में देखते थे। तुम्हारे असमंजस का एक कारण यह भी हैं तुम्हारी पात्रता का वर्णन करें, तो भी कदाचित् तुम्हारे संदेह का निवारण न हो। इसीलिए तुम्हें पिछले तीन जन्मों की जानकारी दी गई।''

''यह तुम्हारा दिव्य जन्म है। तुम्हारे इस जन्म में भी हम तुम्हारे सहायक रहेंगे और इस शरीर से वह कराएँगे, जो समय की दृष्टि से आवश्यक है।'' परमपूज्य गुरुदेव के इस आत्मकथ्य को श्रद्धालु परिजन उनके लीलाप्रसंग के रूप में ही देखते हैं, अन्यथा पिछले तीन जन्मों में सिद्ध संत और युग को बदल देने की भूमिका में रह चुके गुरुदेव को इस जन्म में आरंभ से शुरू करने या कठोर तप करने की क्या आवश्यकता थी? परिजनों के अनुसार गुरुदेव के लीलाप्रसंग अपने माध्यम से साधकों के सामने एक उदाहरण रखने के लिए ही थे।

किसी विद्वान ने अपने प्रशंसकों को उपदेश देते हुए कहा, 'लोगों, तुम्हारा साक्षात्कार दो प्रकार के आदमियों से होगा। एक शरीफ से दूसरा कमीन से। तुम्हें इन दोनों से डरना चाहिए।

किसी ने पूछा, ''शरीफ से क्यों डरा जाए?''

विद्वान ने उत्तर दिया, ''प्रश्न यह नहीं है कि क्यों डरा जाए। बल्कि यह पूछो कि शरीफ से कब डरा जाए।'' फिर स्वयं ही उत्तरदिया, ''शरीफ से उस समय डरो, जब वह भूखा हो।''

किसी ने प्रश्न किया, और कमीन से कब डरा जाए ?''

विद्वान ने उत्तर दिया, जब उसका पेट भरा हो।''

प्रवचनों, लेखों और व्यक्तिगत चर्चाओं में गुरुदेव अपनी मार्गदर्शक सत्ता के बारे में बताया करते थे। परिजनों को स्वाभाविक ही अपने गुरुमह-दादा गुरू के बारे में और जानने तथा हो सके तो उनसे संपर्क करने की इच्छा होती। कुछ शिष्यों ने उनसे अनुरोध भी किया कि गुरुवर! स्वामी सर्वेश्वरानंद

जी के दर्शन कराएँ। गुरुदेव ने उनहें अपने ही रूप में देखने के लिए कहा। कुछ साधकों को संतोष नहीं हुआ। बालहठ या तीव्र उत्कंठा देखकर गुरुदेव ने उन्हें अनुभूति का अवसर दिया भी। गुजरात के एक परिजन मगन भाई भी इसी तरह के साधकों में थे। बार-बार जिद कर उन्होंने गुरुदेव से स्वामी सर्वेश्वरानंद जी के दर्शन का उपाय पूछ लिया। मार्ग बता दिया गया और यह भी कि अमुक दिन उत्तरकाशी में अमुक स्थान पर हमारे गुरुदेव से भेंट हो जाएगी। मगनभाई नियत तिथि और नियत समय पर नियत स्थान पर गए। वहाँ क्षणभर के लिए गुरुमह के दर्शन हुए। मगनभाई कुछ समझें, इससे पहले ही वे तेज कदमों से चलते हुए पहाड़ी चढ़ गए। मगन भाई भी उनका पीछा करते हुए गए। एक जगह उसी आकृति को बैठे देखा। दिगंबर और अवधूत दादा गुरु की झलक दूर से देखी और पास पहुँचे तो आश्चर्यचकित रह गए। अब वहाँ दिगंबर अवधूत आकृति नहीं थी, बल्कि परमपूज्य गुरुदेव स्वयं विराजे हुए थे। मगनभाई ने सोचा, सपना तो नहीं देख रहे। उन्होंने आँखें मलीं और दोबारा देखा तो पाया कि दादा गुरु ही बैठे है। कुछ क्षण बाद वे भी लुप्त हो गए। मगनभाई तुरंत शांतिकुंज लौट आए और गुरुदेव की बात नहीं मानने के लिए क्षमा माँगने लगे। क्षमा की औपचारिकता पर गुरुदेव ने एक बार फिर मीठी झिड़की दी, आगे से जितना बताया जाए, उससे ज्यादा हठ मत करना। मगनभाई लिखते हैं कि इसके बाद उन्हें अपने गुरु के सामने आग्रह करने तक का साहस नहीं हुआ, जिद् करना तो दूर की बात है।

सर्वतोभावेन गुरु की शरण में जाने के बाद शिष्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने का दायित्व गुरु का ही होता है। शिष्य की पात्रता देखकर वहीं निश्चित करता है कि कब अनुग्रह किया जाए। मुख्य शर्त यही है कि शिष्य का समर्पण बिना शर्त का हो। अपनी ओर से कोई माँग न हो। माँग उठते ही समर्पण खंडित हो जाता है। शिष्य के समर्पण को छोटे जलाशय और सागर में संबंध के दृष्टांत से भी समझाया जाता है। सूखा तालाब यह शर्त रखे कि सागर मुझे पर्याप्त जल से भर दे, उसके बाद मार्ग बनाऊँ, तो यह कभी संभव नहीं होगा। अपनी खालीपन भरने के लिए जलाशय को समुद्र के प्रति खुलना ही होगा, आंतरिक स्रोतों से या सतह पर दिखाई देने वाली नहर- नाली के रास्ते संबंध स्थापित करना ही होगा। साथ ही अपने मिट जाने के भय से भी मुक्त होना होगा। जलाशय तभी सागर का अंश हा सकता है। सिर्फ सबंध जोड़ना ही पर्याप्त नहीं है, गुरु के प्रति अपनी सभी आकांक्षाओं, सीमाओं और इच्छाओं को तिलांजलि देकर समर्पित होना पड़ेगा। गुरु के भीतर जलती हुई रोशनी इस बेशर्त समर्पण के बाद ही शिष्य के जीवन में प्रकाश उत्पन्न करती है।

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि ईश्वर को जानने के बाद साधक ईश्वर बनता है या नहीं, कुछ कह

सत्य ईश्वर का स्वरूप है। यदि हम सत्य के प्रति एक निष्ठ हो जायें तो ईश्वर की कृपा प्राप्ति की अभिलाषा की बात भी नहीं रहेगी। क्योंकि वह सत्य स्वरूप नारायण सर्वदा और सर्वथा आपके अन्दर बैठा हुआ अनवरत दृष्टिगत हो जायेगा।

नहीं सकते। लेकिन यह जरूर सच है कि गुरु को जानने, उनके प्रति समर्पण कर देने के बाद शिष्य भी गुरु की तरह समर्थ हो जाता है। ईश्वर की कृपा साधक को सिद्ध बनाती या मोक्ष दे देती है, ईश्वर नहीं बना देती, लेकिन गुरु की कृपा शिष्य को अपनी ही तरह बना लेती है, बल्कि स्वयं गुरु ही उसके रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं, इसलिए गुरुसत्ता ईश्वर से भी महान् परब्रह्म है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संबंध में प्रसिद्ध है कि उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को समय से पहले ही आत्मसाक्षात्कार करा दिया था। नरेंद्रनाथ में पात्रता तो विकसित हो रही थी, लेकिन वे आत्मसिद्धि के उपयुक्त नहीं हो सके थे। गुरुसत्ता ने कुछ क्षण के पादस्पर्श से उन्हें सिद्धि के द्वार तक पहुँचा दिया था। आत्मसिद्धि की झलक मिलने के बाद गुरु ने वापस पूर्व स्थिति में पहुँचा दिया कि सिद्धि पर अब ताला लगा दिया है, चाभी मेरे पास ही रहेगी। उपयुक्त समय पर तुम्हें मिलेगी। तब तक मेरा सौंपा हुआ काम करो। स्वामी विवेकानन्द ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और जीवन भर गुरु की शिक्षाओं का प्रचार करते हुए उनके संदेश को दिगूदिगंत में गुँजाते रहे। कहते हैं कि यदाकदा स्वामी विवेकानन्द को अपनी उस अनुभूति का स्मरण आता था और वे बेचैन हो उठते थे, लेकिन गुरु ने उपयुक्त समय पर ही समाधि वापस करने का निर्धारण किया हुआ था। वह समय स्वामी विवेकानन्द के महाप्रयाण से कुछ समय पहले आया। उन्हें समाधि लाभ हुआ और यह बोध भी हुआ कि गुरु ने क्यों रोक दिया था? लेकिन बोध से पहले भी उन्हें अपनी मार्गदर्शक सत्ता के प्रति कोई शिकायत नहीं थी।

आशय यह है कि महान् सन्यासियों और उच्चकोटि की आध्यात्मिक विभूतियों ने भी ईश्वर की सत्ता, आत्मसिद्धि या भगवत्-प्राप्ति को गुरु के बाद ही महत्व दिया हैं इस संबंध में एक सावधानी जरूर बरती जानी चाहिए। आज की विषम परिस्थितियों में साधु या संत का वेश धारण किए कई लोग श्रद्धा-समर्पण की माँग करते घूमते है। उनके लिए अध्यात्म आंतरिक उत्कर्ष का नहीं, लाभ कमाने का व्यवसाय है। प्रचार और वैभव से प्रभावित हुए बिना गुरु की शरण में जाना चाहिए। निर्धारण में कोई कठिनाई हो रही हो, तो अपने हृदय में बैठी श्रद्धा और मस्तिक में बैठे विवेक की शरण जाना चाहिए। वहाँ से जो प्रेरणाएँ मिलें, उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए, वह साधना भी उपयुंक्त समय पर गुरु को उपलब्ध करा देती है। विवेक और श्रद्धापूरित चित्त के लिए वह क्षण जल्दी ही सामने आता है, जिसमें शिष्य को तलाशते हुए गुरु स्वयं पहुँच जाते हैं। साक्षात् परब्रह्म कही गई गुरुसत्ता के लिए ढूँढ़-खोज की नहीं, पात्रता विकसित करने की ही जरूरत है। ◆

संसार-चक्र में साधना

तन धाम साधन का यही।
यह मोक्ष का भी द्वार है।।

हृदयेश माया से भ्रमित।
यह भूत बारम्बार है।।

संसार- चक्र में साधना।
आधार चक्र ही सार है।।

निज भक्ति हो गुरु शक्ति हो।
नैया 'दया' बस पार है।।

- पं. दयाशंकर शुक्ल

◆

काशी मुमुक्षु भवन सभा-समाचार

अप्रैल-मई-जून २००३

कच्चा भण्डारा : रोटी, चावल, दाल, साग आदि ६०००/- एक बार में
पक्का भण्डारा : खीर, पूड़ी, साग, मिठाई आदि १००००/- एक बार में

उपर्युक्त राशि के ब्याज से वर्ष में एक बार (एक दिन) स्थायी भण्डारा

स्थायी भण्डारा (दण्डी क्षेत्र) अप्रैल २००३

श्रीमती द्रौपदी देवी बूबना	कोलकाता	पक्का	१.४.२००३
श्री रवीन्द्र कुमार पसारी	नई दिल्ली	कच्चा	२.४.२००३
स्व० फूलचन्द अग्रवाल	कोलकाता	कच्चा	६.४.२००३
श्री सुखदेव राज सनसोहा	गुवाहाटी	पक्का	१३.४.२००३
स्व० श्रीमती केदारमल अग्रवाल	कोलकाता	कच्चा	१६.४.२००३
श्री हनुमान प्रसाद बसन्ती देवी	कोलकाता	कच्चा	२४.४.२००३
स्व० शिवबाबू मनोज कुमार बरनवाल	भदोही	कच्चा	२६.४.२००३
स्व० भोलानाथ कपूर	वाराणसी	पक्का	२७.४.२००३

अस्थायी भण्डारा

डॉ० श्रीमती मार्गी खन्ना	कानपुर	कच्चा	४.४.२००३
स्वामी उमेश्वरानन्द तीर्थ	ईश्वरमठ	कच्चा	५.४.२००३
श्रीमती विमला देवी जालान	आरा	कच्चा	१२.४.२००३
श्री महेन्द्र सोनी	लुधियाना	पक्का	१४.४.२००३
श्रीमती यू० सुगनझा	हैदराबाद	पक्का	१५.४.२००३
श्रीमती कुन्ती वर्मा	मुमुक्षुभवन	पक्का	१७.४.२००३
श्री स्वामी राम प्रकाश	वाराणसी	कच्चा	२०.४.२००३
श्रीस्वामी भगवतानन्द तीर्थ	ईश्वरमठ	कच्चा	२१.४.२००३

श्री स्वामी देवेन्द्र आश्रम	ईश्वरमठ		पक्का	२२.४.२००३
श्री स्वामी राम देवानन्द तीर्थ	ईश्वरमठ	कच्चा		२३.४.२००३
श्रीमती विमला दूबे	वाराणसी	पक्का		२८.४.२००३

अन्नक्षेत्र, भण्डारा

श्री विनोद गुप्ता	वाराणसी	कच्चा	१.४.२००३
श्री उमाशंकर गोयल	मुमुक्षुभवन	कच्चा	२.४.२००३
श्री शुक्ल जी	वाराणसी	कच्चा	४.४.२००३
श्रीमती गंगू बाई मधुकर शिन्दे	मुम्बई	कच्चा	५.४.२००३
श्री सन्त कुमार तिवारी	जबलपुर	कच्चा	७.४.२००३
श्रीमती विमला देवी जालान	आरा	कच्चा	६.४.२००३
श्रीमती ललिता देवी शाह	कलकत्ता	कच्चा	२३.४.२००३
स्व० भोलानाथ कपूर	वाराणसी	कच्चा	२७.४.२००३
श्रीमती सुशीला देवी गुप्ता	वाराणसी	कच्चा	२६.४.२००३
श्री उमेश्वर स्वरूप ब्रह्मचारी	ईश्वरमठ	कच्चा	३०.४.२००३

प्रथमा शिशु विद्यालय, भण्डारा

श्री सत्यनारायण अग्रवाल	मुमुक्षुभवन	कच्चा	१६.४.२००३

उत्तरकाशी दण्डीस्वामी अन्नक्षेत्र, (स्थायी भण्डारा)

श्री सत्यनारायण केडिया	सलकिया	कच्चा	१.४.२००३
श्री नन्दलाल भगवानदास जन सेवा निधि	वाराणसी	कच्चा	१३.४.२००३
श्री वासुदेव रूँगटा	कलकत्ता	कच्चा	१६.४.२००३
श्रीराम कुमार धनानियां चैरिटेबुल ट्रस्ट	कलकत्ता	पक्का	२१.४.२००३

नवरात्रि फलाहार (मंदिर)

श्री उमाशंकर गोयल	मुमुक्षुभवन	२.४.२००३
श्री सत्यनारायण अग्रवाल	मुमुक्षुभवन	३.४.२००३

गुप्तदाता द्वारा	वाराणसी	४.४.२००३
श्री शिवशंकर बाजपेयी	मुमुक्षुभवन	५.४.२००३
श्रीमती ए. एस. के.	हैदराबाद	६.४.२००३
श्रीमती विमला जालान	आरा	७.४.२००३
श्रीमती गायत्री देवी जालान	आरा	८.४.२००३
श्रीमती राधा बाई शर्मा	मुमुक्षुभवन	९.४.२००३
श्रीमती पी. वी. रमना	मुमुक्षुभवन	१०.४.२००३
श्री जनार्दन मिश्र	मुमुक्षुभवन	११.४.२००३

भुवालका जन कल्याण ट्रस्ट, कलकत्ता, होमियोपैथिक दातव्य, औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
२२३	६०१	८२४

श्री कमला देवी डालमिया चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
६३७	६६६	१३०३

स्थायी भण्डारा (दण्डी क्षेत्र) मई २००३

श्रीमती गोमती देवी खेमका	वाराणसी	पक्का	१.५.२००३
(अराधना) परमपूज्य गुरु स्वामी घनश्यामनंद तीर्थ	ईश्वरमठ	पक्का	३.५.२००३
स्व. श्रीमती सावित्री देवी द्वारा निर्मला बेरीबाल	रक्सौल	कच्चा	४.५.२००३
स्व.श्रीमती पुष्पा देवी अग्रवाल द्वारा आर.एस. अग्रवाल	कलकत्ता	पक्का	९.५.२००३
स्व. सहदेव लाल शाह	संभलपुर	फलाहार	१२.५.२००३
श्री मुंशीलाल एवं श्रीमती रन्नो देवी	वाराणसी	कच्चा	१६.५.२००३
श्री रामप्रसाद वियोगी	वाराणसी	पक्का	२१.५.२००३
श्री सीताराम धानुका द्वारा परमानन्द खेमका	वाराणसी	पक्का	३१.५.२००३

अस्थायी भण्डारा

श्रीमती अनार देवी शर्मा	मुमुक्षुभवन	पक्का	२.५.२००३

श्रीमती शारदा देवी कुलवाल	जबलपुर	पक्का	५.५.२००३
श्रीमती सावित्री देवी टेकड़ीवाल	आरा	पक्का	६.५.२००३
श्री मथुरा प्रसाद शुक्ल	वाराणसी	पक्का	८.५.२००३
श्री स्वामी रामानन्द तीर्थ के शिष्य	वाराणसी	पक्का	१०.५.२००३
स्व. स्वामी रामधारी	वाराणसी	पक्का	११.५.२००३
श्री रामअवतार तिवारी	कानपुर	कच्चा	१३.५.२००३
श्री संजय खण्डेलवाल	जबलपुर	कच्चा	१४.५.२००३
श्री महेन्द्र सोनी	लुधियाना	पक्का	१५.५.२००३
श्री कृष्णकान्त कमला देवी खण्डेलवाल	जबलपुर	पक्का	१६.५.२००३
स्व० भूरामल कन्दोई	कलकत्ता	पक्का	२५.५.२००३
श्री राजकुमार सोनी	लुधियाना	पक्का	२७.५.२००३

अन्न क्षेत्र, भण्डारा

श्री बनवारी लाल बागड़िया	मधुपुर	कच्चा	१.५.२००३
श्री शिवशंकर बाजपेयी	ईश्वरमठ	कच्चा	२.५.२००३
श्रीमती अनार देवी शर्मा	मुमुक्षुभवन	कच्चा	३.५.२००३
श्री पूरनमल मोर	कलकत्ता	कच्चा	४.५.२००३
श्री विभूति मिश्र	ईश्वरमठ	कच्चा	६.५.२००३
श्री हजारी प्रसाद अग्रवाल	कलकत्ता	कच्चा	८.५.२००३
श्री स्वामी रत्नेश्वर	वाराणसी	कच्चा	९.५.२००३
श्री सोमदेव अग्रवाल	सलकिया	कच्चा	१०.५.२००३
श्री परमेश्वरी लाल भांजीरामका	कलकत्ता	कच्चा	१३.५.२००३
श्री सदानन्द जोशी	मुमुक्षुभवन	कच्चा	१४.५.२००३
श्री रामदीन शर्मा	मुमुक्षुभवन	कच्चा	१५.५.२००३
श्रीमती भगवती देवी बाजाज	गोहाटी	कच्चा	१६.५.२००३
श्री कैलाशचन्द्र गोयल	हाबड़ा	कच्चा	१७.५.२००३
स्व० अनन्त राम अग्रवाल	रक्सौल	कच्चा	२६.५.२००३

श्री सत्यनारायण शर्मा	अजमेर	कच्चा	३०.५.२००३
श्री विनोद गुप्त	वाराणसी	कच्चा	३१.५.२००३

प्रथमा शिशु विद्यालय (भण्डारा)

श्री पी. सुब्बाराव	मुमुक्षु भवन	पक्का	८.५.२००३
श्रीमती ए. एस. के. हैदराबाद	मुमुक्षु भवन	कच्चा	१५.५.२००३
सुश्री 'सूक्ति' द्वारा विजय कुमार अग्रवाल, पद्मराग, वाराणसी		(दुग्ध वितरण)	३१.५.२००३

दण्डीं स्वामी अन्न क्षेत्र, उत्तर काशी, स्थायी भण्डारा

श्रीमती चमेली देवी गर्ग	हरियाणा	पक्का	१.५.२००३
श्री नंदलाल भगवानदास जनसेवा निधि	वाराणसी	कच्चा	१३.५.२००३
सत्यगुरु लालवन्ती जी की स्मृति में	हावड़ा	कच्चा	१४.५.२००३
स्व. किशनदयाल बूबना	कोलकाता	पक्का	२०.५.२००३
श्री रामकुमार धनानियाँ चैरिटेबुल ट्रस्ट	कोलकाता	पक्का	२२.५.२००३

भुवालका जन कल्याण ट्रस्ट, कलकत्ता, होमियोपैथिक दातव्य, औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
२९८	७०३	१००१

श्री कमला देवी डालमिया चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
६८२	८३७	१५१९

स्थायी भण्डारा (दण्डी क्षेत्र) जून २००३

श्री लक्ष्मी नारायण अग्रवाल एवं श्रीमती विट्टोदेवी	इलाहाबाद	कच्चा	५.६.२००३
श्री माँगे राम खरकिया	हावड़ा	फलाहार	१०.६.२००३
श्रीमती रामदुलारी देवी	मुजफ्फरपुर	कच्चा	११.६.२००३
स्व० जयदेव लोहिया की स्मृति में	वाराणसी	पक्का	१४.३.२००३
श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा	काठमाण्डू	कच्चा	२२.३.२००३

स्व० भगवानी देवी मारू	वाराणसी	फलाहार	२५.६.२००३
स्व० स्वामी प्रणवानंद सरस्वती	मेदिनीपुर	कच्चा	२७.६.२००३
स्व० द्वारिका प्रसाद रानियावाला	हनुमानगढ़	कच्चा	२८.६.२००३
स्व० श्रीमती हरिदेवी खेमका	वाराणसी	पक्का	२९.६.२००३

अस्थायी भण्डारा

स्व० मिठ्ठन लाल तारादेवी गुप्ता	वाराणसी	कच्चा	२.६.२००३
श्री जगदीश स्वरूप ब्रह्मचारी	ईश्वरमठ	कच्चा	६.६.२००३
स्व० मिठ्ठन लाल तारादेवी गुप्ता	वाराणसी	कच्चा	८.६.२००३
स्व० रसिक लाल सोनी द्वारा महेश कुमार स्वर्णकार	मुरैना	कच्चा	९.६.२००३
श्रीमती गंगा भालोटिया	वाराणसी	कच्चा	१२.६.२००३
श्रीमती सावित्री देवी एवं शारदा देवी	मुम्बई	कच्चा	१३.६.२००३
श्री महेन्द्र सोनी	लुधियाना	पक्का	१५.६.२००३
श्री विकास कुमार	मुजफ्फरपुर	कच्चा	१६.६.२००३
श्रीमती वी. कनक दुर्गा	हैदराबाद	कच्चा	१७.६.२००३
श्री रामदीन शर्मा	मुमुक्षुभवन	पक्का	१८.६.२००३
श्रीमती परमेश्वरी देवी तोदी	वाराणसी	पक्का	२१.६.२००३
श्री के० एन० राघव राव	हैदराबाद	कच्चा	२६.६.२००३
श्रीमती भगवती उपाध्याय	वाराणसी	कच्चा	३०.६.२००३

अन्नक्षेत्र भण्डारा

स्व० मुनिया देवी	वाराणसी	कच्चा	६.६.२००३
स्व० रघुनाथ प्रसाद केडिया	वाराणसी	कच्चा	९.६.२००३
श्रीमती वी० कनक दुर्गा	हैदराबाद	कच्चा	११.६.२००३
श्रीमती वी० कनक दुर्गा	हैदराबाद	कच्चा	१२.६.२००३
श्री वी० सत्यनारायण	मुमुक्षुभवन	कच्चा	१३.६.२००३
श्री जीवन राम केडिया	कोलकाता	पक्का	१६.६.२००३
स्व० गुलजारी लाल	पटना	कच्चा	१९.६.२००३

श्रीमती कमला राठी	वाराणसी	कच्चा	२०.६.२००३
श्रीमती परमेश्वरी तोदी	वाराणसी	कच्चा	२१.६.२००३
श्री मोहन लाल चौधरी	कोलकाता	कच्चा	२२.६.२००३
श्री राजेन्द्र कुमार अग्रवाल	लखनऊ	कच्चा	२५.६.२००३
श्री बाल कृष्ण जगदीश प्रसाद केडिया	कोलकाता	कच्चा	२६.६.२००३
श्रीमती परमेश्वरी तोदी	वाराणसी	कच्चा	२८.६.२००३
श्री विनोद कुमार गुप्त	वाराणसी	कच्चा	२९.६.२००३

प्रथमा शिशु विद्यालय (भण्डारा)

स्व० मिट्ठन लाल तारा देवी गुप्त	वाराणसी	कच्चा	२.६.२००३

दण्डी स्वामी अन्नक्षेत्र, उत्तर काशी, (स्थायी भण्डारा)

स्व० बजरंग लाल शाह	सलकिया	कच्चा	९.६.२००३
स्व० कमल कुमार कटेसरिया	धनवाद	पक्का	१२.६.२००३
श्री नन्दलाल भगवान दास जनसेवा निधि	वाराणसी	कच्चा	१३.६.२००३
श्री राम कुमार धनानियां चैरिटेबुल ट्रस्ट	कलकत्ता	पक्का	२१.६.२००३

भुवालका जन कल्याण ट्रस्ट, कलकत्ता, होमियोंपैथिक दातव्य, औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
२७१	६१६	८८७

श्री कमला देवी डालमिया चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय

नये रोगी	पुराने रोगी	कुल योग
५५४	६२४	११७८

◆

एक बार गुरु वशिष्ठ व गुरु विश्वामित्र में बहस छिड़ी। गुरु वशिष्ठ सत्संग की महत्ता पर बल दे रहे थे और गुरु विश्वामित्र तपस्या पर बल दे रहे थे अन्त में वे ब्रह्मा जी के पास निर्णय करने पहुँचे किन्तु ब्रह्मा जी ने इस विषय में निर्णय देने में असमर्थता जाहिर की तब वे नागराज शेषनाग जी (वासुकि) के पास निर्णय प्राप्त करने पहुचे इस पर शेषनाग जी ने कहा, "भाई मेरे सर पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी का भार रखा है। अतः यदि तुमसे कोई मेरे सर का भार एक क्षण के लिये साध ले तो मै। अपना निर्णय दूं। यह सुनकर गुरु विश्वामित्र जी बोले, "मैं इस पृथ्वी के सम्पूर्ण भार को साधने के लिये अपने जीवन की पूरी तपस्या का फल अर्पित करता हूं किन्तु पृथ्वी शेषनाग जी के सिर से हिली तक नहीं। तब गुरु वशिष्ठने कहा, "मैं कुछ समय तक पृथ्वी का भार साधने के लिये अपना सत्संग का कुछ फल अर्पित करता हूं। गुरु जी के पास इतना कहते ही पृथ्वी अपने आप शेषनाग जी के सिर से उठ गयी। निर्णय हो चुका था। शेषनाग जी को कुछ कहने की जरूरत ही नही रही।

काशी मुमुक्षु सभा की साधारण सभा


मुमुक्षु भवन सभा के प्रधानमंत्री श्री सीताराम जी खेतान साधारण सभा में रिपोर्ट पढ़ते हुये।

दिनांक २७ जुलाई २००३, रविवार को काशी मुमुक्षु भवन सभा की साधारण सभा सम्पन्न हुई। सभा में सभा के अध्यक्ष श्री सुदर्शन जी बिड़ला, ट्रस्टी श्री नन्दलाल जी टाँटिया, उपाध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम दास मोदी, उपाध्यक्ष श्री राधेश्याम खेमका, श्री माखरिया जी एवं प्रधान मंत्री श्री सीताराम जी खेतान एवं सभा की प्रबंधकारिणी के सदस्य एवं अन्य सदस्य काफी संख्या में उपस्थित थे।

प्रधानमंत्री श्री सीताराम जी ने पिछली कार्यवाही की रिपोर्ट पढ़ी तथा किये गये कार्यों एवं भविष्य के कार्यो की रूप रेखा बताई।

उपाध्यक्ष ट्रस्टी श्री राधेश्याम जी खेमका ने कहा की हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि सेवा कैसे करें हम धन जमा करने की ओर ध्यान न दें, वैसे तो सेवा सभी कर रहे हैं पर हमें ध्यान रखना चाहिये कि काशी में तीर्थ यात्रियों की एवं अन्य यात्रियों की भीड़ बहुत बढ़ती जा रही है और स्थान की कमी हो रही है। ऐसे समय में मुमुक्षुभवन, काशी में रहने वाले एवं आने वालो की सेवा अधिक कर सकता है, इस सेवा में बढ़ोत्तरी कैसे करें उसपर समिति को ध्यान देना चाहिये, यह ठीक है पहले से हमने सेवा, सत्कार, सफाई व सुविधाओं का काफी विस्तार किया है पर हमें और ध्यान देना चाहिए।


मुमुक्षु भवन के ट्रस्टी एवं उपाध्यक्ष श्री राधेश्याम जी खेमका अपने सुझाव व्यक्त करते हुये

बुजुर्ग ट्रस्टी एवं उत्तर काशी की सम्पूर्ण देखभाल में रत साधु स्वभाव, श्री नन्दलाल जी टाँटिया ने सज्जन वाक्य कहे-उन्होंने बताया उत्तर काशी में ६० कुटी है। जिसमें रहने की उत्तम व्यवस्था है, साधु रहते है, १२५ लोगों को मधुकरी दी जाती है, दूध दिया जाता है, यह जगह बहुत ही दिव्य स्वामी व साधु के दर्शन करने की जगह है। उन्होंने सभी का आह्वान किया कि उत्तर काशी अवश्य आवें। वार्ता के समय उन्होंने एक परमभक्त साधु का दृष्टान्त बताया कि वे नित्य साधुओं को दूध वितरण करते हैं, जिनमें कम से कम ६० साधु तो होते ही है स्वयं दूध नहीं पीते जब उनसे पुछा गया कि आप स्वयं दूध क्यों नहीं पीते तो उन्होंने जबाब दिया कि, नारायण, मैं तो कम से कम ६० मुँह से दूध पी रहा हूँ अब मुझे और दूध की क्या आवश्यकता है।



साधु स्वभाव ट्रस्टी नन्दलाल जी टाँटिया अपना अनुभव बताते हुये

उपाध्यक्ष व वृद्धावस्था में भी कर्मठ श्री पुरुषोत्तम दास मोदी जी, जो की सभा का संचालन कर रहे थे ने बताया की-मुमुक्षु भवन में सुविधा बहुत बढ़ा दी गई है, यात्रियों के लिये भी सुविधा बढ़ा दी गई है अधिकांश भवन की मरम्मत व पूर्ननिर्माण किये गये हैं, जिसमें बिड़ला जी का काफी सहयोग रहा है। तथा आगे भी किये जायेंगें।

विवाह के लिये सुन्दर लान, रसोईघर, शौचालय आदि की व्यवस्था की गई है, और इसे बहुत ही कम शुल्क पर उपलब्ध कराया जा रहा है।

सरल स्वभाव, गरिमामय व्यक्तित्व के धनी सभा अध्यक्ष श्री बिड़ला जी ने अपने उद्धबोधन में कहा सभी संस्थाओं को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा। आगे आने वाले समय में सरकार कहीं भी कोई मदद देने की स्थिति में नहीं रहेगी। खासकर उन्होंने संस्कृत अध्ययन-अध्यापन के लिये इस बात की चर्चा की उन्होंने कहा की संस्कृत जानने वाले, कर्मकाण्डी विद्वान, ब्राह्मण, पण्डित का दिनों दिन अभाव होता जा रहा है। इसलिये अगर हम ध्यान दे तो हमारे यहाँ से पढ़कर निकलने वाले विद्वत जन को काम के लिये कोई कमी नहीं रहेगी।

आपने सभा में सदस्यों द्वारा की गई जिज्ञासा का समाधान भी किया। मुमुक्षु संपादक प्रमोद शाह ने मुमुक्षु पत्रिका की प्रतियाँ भेंट की। धन्यवाद मोदी जी ने दिया।

साधारण सभा केपश्चात श्री बिड़ला जी ने पूरे मुमुक्षुभवन का भ्रमण व निरीक्षण किया एवं जगह-जंगह अपनी जिज्ञासा, अनुभव व सुझाव दिये जोकी मुमुक्षु भवन सभा के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा।

काशी मुमुक्षु भवन में स्वतन्त्रता दिवस समारोह

स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदांग महाविद्यालय के प्रांगण में प्रधानाचार्य महोदय द्वारा ध्वजोत्तोलन किया गया तथा सभागार में सभा आयोजित की गई, जिसमें महाविद्यालय के दिलीप शर्मा, सुभाष त्रिपाठी, सुजीत राहुल, आशुतोष आदि छात्रों ने राष्ट्रीय गीतों एवं ललित वक्तव्यों के माध्यम से अपने-अपने विचार व्यक्त किये। मुख्य अतिथि, मुमुक्षु पत्रिका के सम्पादक व प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री प्रमोद शाह ने



गरीमामय व्यक्तित्व के धनी अध्यक्ष श्री सुदर्शन जी बिड़ला द्वारा उद्बोधन

अपने वक्तव्य में छात्रों को उद्‌बोधित करते हुये अंध्यापकों से शिक्षा के भावात्मक बोध की ओर इंगित किया। सभा का विसर्जन आचार्य महोदय श्री नरसिंह द्विवेदी के अध्यक्षीय भाषण से सम्पन्न हुआ। मंच संचालन एवं धन्यवाद ज्ञापन डा. उमाकान्त चतुर्वेदी ने किया सभा में अध्यापक, छात्र मुमुक्षु भवन सभा के कर्मचारी, विद्वतजन व वहाँ के निवासी भी उपस्थित थे।

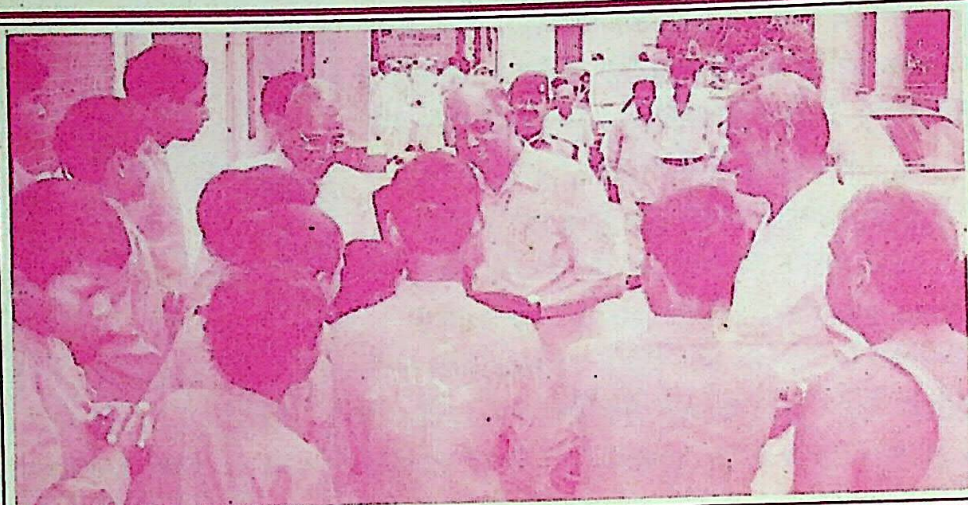
◆

उपाध्यक्ष, वरिष्ठ श्री पुरुषोत्तम दास जी मोदी सभा संचालन करते हुये।

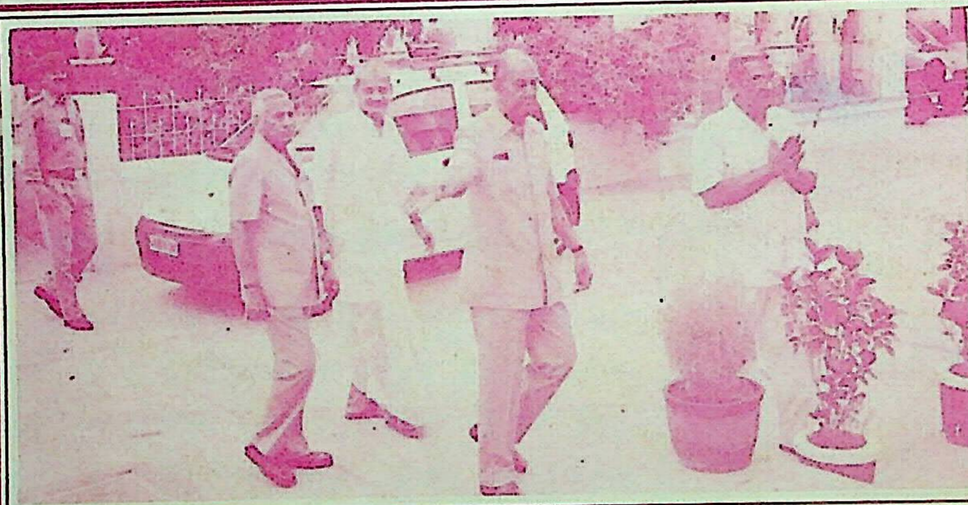
मुमुक्षु पत्रिका आपकी अपनी पत्रिका है इसके लिये आपके लेख, सुझाव व शिकायतों का स्वागत है - *सम्पादक*

प्रबंधकारिणी सदस्य व मुमुक्षु सम्पादक प्रमोद शाह मुमुक्षु पत्रिका की प्रति अध्यक्ष श्री सुदर्शन बिड़ला को भेंट करते हुये।

Regd. No. LRN 91 Reg. No. RN 40196/82 जुलाई-अगस्त-सितम्बर २००३



मुमुक्षु भवन के निरीक्षण के दौरान छात्रों से वार्तालाप करते हुये
अध्यक्ष श्री सुदर्शन बिड़ला जी



मुमुक्षु भवन सभा के निरीक्षण निर्देश देते हुये
अध्यक्ष श्री सुदर्शन जी बिड़ला

काशी मुमुक्षु भवन सभा के लिए प्रधान मंत्री श्री सीताराम खेतान द्वारा प्रकाशित
महावीर प्रेस, भेलूपुर द्वारा मुद्रित। सम्पादक : प्रमोद शाह अवन्तिका, बाँसफाटक, वाराणसी।